प्रोक्ति : स्वरूप, संरचना और शैली

प्रोक्ति : स्वरूप, संरचना और शैली

डॉ० इन्दु शीतांशु



प्रतिभा प्रकाशन

होशियार पुर-146001

प्रथम संस्करण : 1989

मूल्य : पचास रुपये

प्रकाशक : प्रतिभा प्रकाशन
11/22 टैगोर नगर,
होशियार पुर 146001 (पंजाब)

मुद्रक : मानस प्रिंटिंग प्रेस, 9/4753,
पुराना सीलमपुर, दिल्ली-110031

PROKTI : SWAROOP, SANRACHNA AUR SHAILI
by Indu Shitanshu Rs. 50.00

पूर्वा

'प्रोक्ति: स्वरूप, संरचना और शैली' मेरी पहली पुस्तक के रूप मे साहित्य-संसार के सामने आ रही है। दर्शन, भाषा और साहित्य-विषयक अपने अध्ययन और चिंतन के क्रम में मैंने लगातार यह अनुभव किया था कि भाषा की सबसे बड़ी इकाई के रूप मे वाक्य की मान्यता को पूरी तरह स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि कही कुछ ऐसा है, जो वाक्य मे ऊपर भी है। मेरे मन की इस भावना को तब ठोस आधार मिला जब मैंने छठे दशक मे पश्चिमी जगत् में भाषा विज्ञान के क्षेत्र मे 'प्रोक्ति' और 'पाठ' के विषय में की गयी ऐसी स्थापनाओं के विषय में आठवें दशक मे जाना। मैं लगभग 1975 से लगातार इस दिशा में पढने और जानने का प्रयास करती रही हूँ। प्रस्तुत कृति मेरे इस व्यवस्थित अध्ययन का परिणाम है।

इस पुस्तक का सांचा, इसका विन्यास और इसकी रूपरेखा पूरी तरह मेरी अपनी है। प्रोक्ति की संकल्पना को सुस्पष्टता मे समझने-समझाने के लिए किस रूप में प्रस्तुत किया जाए, उसे मैंने अपने ढंग मे सोचा-समझा है।

आरंभ मे मैंने इस पुस्तक के लिए तीन अध्यायों की नियोजना की थी—

1. प्रोक्ति : स्वरूप-विवेचन
2. प्रोक्ति : संरचना-विश्लेषण
3. प्रोक्ति : शैली-अभिलक्षण

इनमें पहले दो शुद्ध रूप मे भाषा-अध्ययन से संबंध रखने वाले अध्याय के रूप मे सामने आते हैं, किन्तु तीसरे अध्याय के नियोजन-क्रम में मेरा यह विशेष मंतव्य रहा है कि प्रोक्ति की दृष्टि से साहित्य के अध्ययन-संदर्भ मे भी लाभ प्राप्त किया जाए। शैली-अभिलक्षण का विशेष अध्याय इसी दृष्टिकोण से लिखा गया है। बाद में मुझे ऐसा लगा कि इस पूरे विवेचन को पूर्णता देने के लिए प्रोक्ति-विश्लेषण की प्रक्रिया को भी स्पष्ट कर देना जरूरी है। अतः मैंने एक और अध्याय 'प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियाकन' नाम से चौथे अध्याय के रूप मे जोड़ दिया है। इस प्रकार इस पुस्तक मे प्रोक्ति के विषय मे परिपूर्ण सामग्री उपस्थित कर दी गई है, जिससे उसकी स्वरूपगत, संरचनागत, शैलीपरक और

विश्लेषण-परक—सभी प्रकार के अध्ययन के लिए सामग्री प्राप्त हो जाती है। पुस्तक-लेखन के क्रम में मैंने मूल संदर्भ का पूरा हवाला दिया है, जिससे यदि कोई अध्येता या जिज्ञासु मूल पुस्तक को देखना चाहे तो वह मेरे द्वारा निर्दिष्ट उद्धरण की सहायता से मूल से भी स्वयं परिचय प्राप्त कर सके।

मेरी बहुत इच्छा थी कि प्रोक्ति की संकल्पना पर विचार करने के क्रम में भारतीय काव्य-शास्त्र पर भर्तृहरि के 'महावाक्य' की संकल्पना से भी उसकी तुलना कर सकूँ। पर समयाभाव में यह कार्य पूरा नहीं हो सका। अतः उसे प्रस्तुत पुस्तक में नहीं दिया जा रहा है। भविष्य में यदि अवसर मिला तो इस संदर्भ में मैं अपने विचार अलग से पुस्तक रूप में प्रस्तुत करूंगी।

मैं 1965-66 सत्र में पटना विश्वविद्यालय में एम० ए० (दर्शन) की छात्रा थी। उसके काफी वर्षों बाद मैंने साहित्य में एम० ए० (हिन्दी) की उपाधि ली और भाषावैज्ञानिक दृष्टि से साहित्य-अध्ययन पर पी-एच० डी० की। अब जबकि दर्शन और साहित्य के बीच मैंने भाषा के अध्ययन को अपना अध्येय विषय बना लिया है और इसी क्षेत्र में अपना लेखन-कार्य आरंभ किया है, मैं आशा रखती हूँ कि मेरी यह पहली पुस्तक हिन्दी की एक साम्प्रतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगी। हिन्दी में भाषा-अध्ययन-विषयक साहित्य-भंडार को निरंतर भरते रहने वाले कई मूर्धन्य ज्ञाता और विचारक हैं, जो अपनी-अपनी दृष्टि से लगातार हिन्दी की श्री-समृद्धि कर रहे हैं। मैं तो इस क्षेत्र में बड़े संकोच के साथ प्रवेश कर रही हूं। मेरा इतना-सा संकल्प है कि इस क्षेत्र में जो विषय विद्वानों से लगभग अछूता रहा है, और जिस पर विवेचन की अभी अपेक्षा है, मैं वैसे ही विषय को अपना विवेच्य बनाऊँ। यही मेरे लिए परितोष-कारक भी है, विवेचित को पुनर्विवेचित करने में वह सुख कहाँ जो किसी नये विषय को पहली बार उपस्थापित करने या उसकी व्याख्या करने में प्राप्त होता है।

इति नमस्कारान्ते !

(श्रीमती) इन्दु 'शीतांशु',
टीचर्स फ्लैट-12,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय-परिसर
अमृतसर

1. प्रोक्ति: स्वरूप-विवेचन
2. प्रोक्ति: संरचना-विवेचन
3. प्रोक्ति: शैली-अभिलक्षण

क्रमदर्शिका

प्रोक्ति । स्वरूप-विवेचन

1. 1. प्रोक्ति : मूल अंग्रेजी संकल्पना और हिन्दी रूपान्तर :

'प्रोक्ति' के मूल अंग्रेजी शब्द 'डिस्कोर्स' (Discourse) और 'अंटरेंस' (Utterance) हैं। 'प्रोक्ति' दोनों का हिन्दी रूपान्तर है। 'अंटरेंस' 'डिस्कोर्स' (Discourse) की अपेक्षा सामान्य शब्द है, पर 'डिस्कोर्स' पाठ-भाषाविज्ञान का पारिभाषिक है। पिछले वर्षों में पाँचवें दशक तक भाषाविज्ञान में भाषा की सर्वोपरि इकाई वाक्य को ही माना जाता था। पर आधुनिक भाषाविदों ने भाषा की सबसे बड़ी इकाई को वाक्य से आगे तक विस्तारित किया, जिसे 'वाक्यातीत' (Beyond Sentence) कहा जाता है। 'प्रोक्ति' इसी स्तर की संकल्पना है।

1. 2. प्रोक्ति : अर्थ-स्पष्टीकरण :

प्रोक्ति के दोनों मूल अंग्रेजी शब्दों में 'Discourse' का अर्थ जहाँ एक ओर संदर्भ-विशेष में तार्किक अनुक्रम में 'संलग्न वाक्यों का समुच्चय' है वहाँ दूसरी ओर इसका अर्थ 'वार्तालाप' भी है। किन्तु पहला अर्थ इतना व्यापक है जिसके अन्तर्गत दूसरे अर्थ का सहज समाहार हो जाता है, जबकि दूसरा अर्थ अपेक्षतया कहीं सीमित है और अपने-आप में एक प्रोक्ति-प्रकार के रूप में ही उपस्थित होने वाला है।

इसी प्रकार अंग्रेजी 'Utterance' शब्द एक ओर सिर्फ 'उच्चार' का अर्थ देता है जबकि दूसरी ओर वह एक 'पूर्ण सांदर्भिक कथन' को व्यक्त करता है। वह सांदर्भिक कथन अपनी पूर्णता में कभी-कभी एक वाक्य में, पर प्रायः अनेक वाक्यों में अभिव्यक्ति पाता है।

अंग्रेजी के उक्त दोनों मूल शब्दों को तथा इनके अर्थ-वैविध्य को देखते हुए प्रस्तुत प्रबंध-लेखन के संदर्भ में 'प्रोक्ति' के लिए अंग्रेजी 'डिस्कोर्स' मूल को ही ग्रहण किया गया है। पाठभाषा-विज्ञान के संदर्भ में 'प्रोक्ति' (Discourse) का 'वाक्यातीत स्तर का तार्किक अनुक्रम में प्रस्तुत सांदर्भिक कथन' वाला अर्थ ही ग्राह्य एवं अभिप्रेत है।

इस दृष्टि से प्रोक्ति के अर्थ-अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए इसे दो विशेषताओं से युक्त माना जाता है। इसकी पहली आर्थी विशेषता वाक्यों के रेखीय अनुक्रम में इसके संयोजित होने की है तथा इसकी दूसरी विशेषता तार्किक स्तर पर सभी खंडों को पूर्ण स्वीकार्य रूप में ग्रहण किये जाने की है।

1. 3 पाठ और प्रोक्ति : अन्तर और अन्तस्संबंध :

1. 3. 1. पाठ और प्रोक्ति : अन्तर :

'पाठ' भाषिक सम्प्रेषण की उन सम्पूर्ण इकाइयों के अध्ययन की माँग करता है, जो समंजस वाक्यीय और अर्थगत संरचनाओं के रूप में उपस्थित हों तथा जिसे बोला और लिखा जा सके। मोटे तौर पर 'पाठ' को 'प्रोक्ति' के माध्यम के बतौर स्वीकार किया जा सकता है।

'पाठ' वह है जो भाषा-पद्धति को समग्र रूप में अथवा साहित्य के विशेष प्रभाग के रूप में व्यवहृत भाषा को विवेचित करता है, पर 'प्रोक्ति' वह है, जिसमें भाषिक तत्त्व साम्प्रेषणिक प्रभाव के रूप में प्रकार्य करते हैं।

प्रायः सभी अतिरिक्त भाषिकीय तत्त्व अभिव्यक्त वाक्यों की संरचना में बड़े व्यवस्थित रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। कहना न होगा कि भाषा के रूप में उसके प्रोक्ति-प्रकार्यों की अनुक्रिया में विकास किया है जिससे सभी वैयक्तिक क्रियाओं, अन्तर-वैयक्तिक संबंधों और संदर्भ के लिए—जो प्रोक्ति के जरिये मध्यस्थित होते हैं—अभिव्यंजना का माध्यम मुहैया किया जा सके।[1]

'प्रोक्ति' की संरचना 'पाठ' की अधिक सीमित संरचना के प्रतिकूल सामाजिक शक्तियों की संरचना के अन्तर्गत, जीवित संस्थितियों में लोगों की एक दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया की सम्पूर्ण जटिल प्रक्रिया को प्रतिबिम्बित करती है।[2]

प्रोक्ति के रूप में सम्प्रेषण और पाठ के रूप में सम्प्रेषण के बीच स्पष्ट अन्तर है। प्रोक्ति वक्ता और श्रोता के बीच के कार्य-सम्पादन के रूप में प्रस्तुत होने वाला भाषिक सम्प्रेषण है। यह एक अन्तर-वैयक्तिक सक्रियता है, जिसका रूप इसके सामाजिक उद्देश्य के द्वारा निर्धारित होता है, पर पाठ वाचिक या लिखित किसी भी रूप में ऐसा भाषिक सम्प्रेषण है, जिसमें श्रोत या चाक्षुष माध्यम से संदेश को कूटबद्ध करने वाला भाषिक सम्प्रेषण होता है। इस प्रकार वाचिक भाषा में पाठ ध्वनि-तरंगों का रेखीय ढांचा है और लिखित भाषा में कागज पर दर्ज संकेतों का रेखीय अनुक्रम है, जो जब पढ़ा जाता है तब ध्वनि-तरंगों

---

1. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक क्रिटिसिज्म (न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986), पृ० 85-86
2. वही, पृ० 70

का रेखीय ढांचा बन जाता है, पर यह कूटबद्ध ध्वनियों का बेतरतीब अनुक्रम नहीं हैं, इसकी भाषिक गुणवत्ताएं होती हैं, जिन्हे वाक्यीय तथा लेखिमिक रूप में देखा जा सकता है।[1]

1. 3. 2. प्रोक्ति और पाठ : अन्तस्सम्बंध :

रोजर फाउलर की मान्यता है कि 'पाठ' को 'प्रोक्ति' के रूप में ग्रहण करना वर्तमान रूप में संघटित भाषा-विज्ञान की क्षमता को खींच कर बढ़ा देता है तथा वह हमें भाषा की ऐसी सैद्धांतिकी ओर ले चलता है, जो ऐतिहासिक सामाजिक और आलंकारिक संदर्भ में अपने पूर्ण गत्यात्मक प्रकार्य के साथ उपस्थित होता है।[2]

'प्रोक्ति' को उद्‌गार अभिव्यक्त करने वाले और 'पाठ' समझने वाले लोगों के बीच की अन्योन्य भाषिक क्रिया की सम्पूर्ण जटिल प्रक्रिया के रूप में रेखांकित किया जाता है। इसलिए प्रोक्ति के रूप में भाषा का अध्ययन करना ऐसी संरचना के पहलुओं की ओर ध्यान की मांग करता है, जो सम्प्रेषण में प्रतिभागियों से व्यक्त पाठों के जरिये निष्पन्न होने वाली क्रियाओं से और उन संदर्भों से सम्बन्ध जोड़ता है, जिनमें प्रोक्ति संचालित होती है।

यदि कोई भाषाविद् अपना ध्यान प्राथमिक तौर पर इस ओर देता है कि कैसे कोई साहित्य-अंग भाषा-पद्धति को समझाता है तो यहाँ साहित्य को 'पाठ' के रूप में स्वीकृत किया जाता है। यदि साहित्य का आलोचक साहित्य मे अन्तर्हित साभिप्रायता की तलाश करता है, काव्य में अन्तर्हित अनिवार्य कलागत संदृष्टि को उजागर करता है, तब काव्यकृति को 'संदेश' के बतौर लिया जाता है। पर जब साहित्य के इन दो अभिगमो के बीच तीसरा अभिगम उपस्थित होता है, जो विशेष तौर में यह दर्शाने का प्रयत्न करता है कि कैसे एक भाषिक पाठ के तत्व संदेश देने की प्रक्रिया में संयोजित होते हैं और कैसे साहित्यिक लेखन के अंश सम्प्रेषण के रूप में प्रकार्य करने लगते है तब यही पहलू साहित्य में 'प्रोक्ति' कहलाता है।[3]

---

1. ज्योफ्री ऐण्ड लीच और मिखाइल एच. शार्ट, 'द रेटोरिक ऑव टेक्स्ट', स्टाइल इन फिक्शन (लण्डन : लौंगमैन, 1981, चतुर्थ पुनर्मुद्रण, 1985), पृ० 209.
2. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक क्रिटिसिज्म (न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986), पृ० 6
3. एच. जी. विड्‌डोसन, स्टायलिस्टिक्स ऐण्ड द टीचिंग ऑव लिटरेचर (लण्डन : लौंगमैन, 1975), पृ० 6

1. 4. प्रोक्ति : सामान्य और साहित्यिक :

साहित्यिक प्रोक्ति समाज की पारस्परिक क्रिया की सामान्य प्रक्रिया से स्थगन में उपस्थित होती है, जबकि सामान्य प्रोक्ति में प्रेषक गृहीता को प्रत्यक्ष संदेश भेजता है। सामान्य संदेश की तरह साहित्यिक संदेश सामाजिक सक्रियता के सामान्य रूप में उत्पन्न नहीं होता। साहित्यिक प्रोक्ति बिना पूर्व स्थिति के उत्पन्न होती है, और किसी भी अनुक्रिया की अपेक्षा नहीं रखती। वह सामान्य सामाजिक जीवन के व्यापार को प्रोत्साहन देने वाले माध्यम के रूप में प्रस्तुत नहीं होती। साहित्यिक प्रोक्ति सन्निहित कोटि की होती है। एक साहित्यिक प्रोक्ति में कई-कई प्रकार की प्रोक्तियां अन्तर्हित होती हैं। यहाँ प्रच्छन्न रचनाकार प्रच्छन्न पाठक को संदेश प्रेषित करता है। पर यहाँ प्रच्छन्न पाठक प्रच्छन्न रचनाकार से बातचीत नहीं कर सकता। इतना ही नहीं प्रच्छन्न रचनाकार का संदेश साहित्यिक प्रोक्ति में तत्कालीन स्थितिगत संदर्भ से मुक्त होता है।[1]

1.5. प्रोक्ति : परिभाषांकन :

प्रोक्ति-विषयक प्राप्त परिभाषाओं को अंग्रेजी और हिन्दी परिभाषा के रूप में वर्गीकृत कर इन पर विचार किया जा सकता है—

1.5.1. अंग्रेजी परिभाषाएं

1.5.2. हिन्दी परिभाषाएं

1.5.1. अंग्रेजी परिभाषाएं :

अंग्रेजी में ट्रिम, सपोर्टा, कार्टर, लीच, फाउलर, मीथन, एडवर्ड्ज की परिभाषाओं के हिन्दी रूपान्तर नीचे द्रष्टव्य हैं :

1.5.1.1. 'वाक्यों का कोई भी ठोस अनुक्रम एक अद्वितीय प्रोक्ति को संघटित करता है।'[2]

1.5.1.2. 'वाक्यों के बीच के व्यवस्थित सम्बन्धों पर किसी भी नैरन्तर्यमूलक प्रोक्ति-पाठ में विचार किया जा सकता है।'[3]

---

1. वही, पृ० 51.
2. जे. एस. एम. उद्धृत, रोजर फाउलर, 'लिंग्विस्टिक थिअरी एण्ड द स्टडी ऑव लिटरेचर', एसेज आन स्टाइल एण्ड लैंग्वेज, सम्पादक रोजर फाउलर (लन्दन : रूटलेज एण्ड कीगेन पाल, 1965, पुनर्मुद्रण), पृ० 16
3. सोसापोर्टा, 'ए प्रोग्राम फॉर द डिफिनेशन ऑव लिटरेचर', यूनिवर्सिटी जर्नल ऑव टैक्सास स्टडीज इन इंग्लिश, (अंक-36 1958), पृ० 30

1.5.1.3. 'प्रोक्ति एक ऐसा छत्रपद है जो भाषा-संघटना के बहुतेरे पहलुओं को आच्छादित करता है। वाक्य के स्तर से ऊपर के स्तर के संबद्ध पाठ को निर्दिष्ट करने के लिए यह व्यवहृत होता है। यह एक विशिष्ट शैली या विद्या का अर्थ भी दे सकता है।'[1]

1.5.1.4. 'प्रोक्ति वक्ता और श्रोता के बीच के कार्य-सम्पादन के रूप में प्रयुक्त भाषिक सम्प्रेषण है। यह एक अन्तर-वैयक्तिक क्रियाशीलता है जिसका रूप इसके सामाजिक उद्देश्य के द्वारा निर्धारित होता है।'[2]

1.5.1.5. 'प्रोक्ति भाषा का यह गुण है जो अन्तर-वैयक्तिक शब्दों की मध्यस्थता करता है, जिसे सम्प्रेषण की किसी कला के द्वारा संवहित होना चाहिए।'[3]

1.5.1.6. 'प्रोक्ति-विश्लेपण एक पद्धति है, जो किसी भी पृथक्-पृथक् पंक्तिबद्ध सामग्री को संयुक्त करने का प्रयास करती है। वह भाषा और भाषा-सदृश होती है जो एक से अधिक प्राथमिक वाक्यों को संयुक्त करती है तथा कुछ स्थानिक संरचना को एक पूर्ण प्रोक्ति के रूप में निरूपित करती है।'[4]

1.5.1.7. 'जिस पद्धति में भाषिक तत्त्व सम्प्रेषणशील प्रभाव के प्रति प्रकार्य करते हैं उसे प्रोक्ति कहते हैं।[5]

1.5.1.8. प्रोक्ति एक ऐसी भाषिक निष्पत्ति है, जो अपने-आप में बिना लम्बाई की सीमा का ध्यान रखे एक पूर्ण इकाई के बतौर प्रस्तुत होती है।[6]

---

1. 'द्रष्टव्य, 'ग्लोसरी', रोनाल्ड कार्टर, लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर : ऐन इन्ट्रोडक्टरी रीडर इन स्टायलिस्टिक्स(लण्डन : जार्ज ऐलेन ऐण्ड अनविन, द्वितीय मुद्रण, 1984), पृ० 239
2. ज्योफ्री एन. लीच और मिखाइल एच. शार्ट, स्टाइल इन फिक्शन (लण्डन : लौंगमैन, चौथा मुद्रण, 1985), पृ० 209
3. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक्स ऐंड नोवेल (लण्डन : मैथुइन, द्वितीय मुद्रण, 1979). पृ०52
4. उद्धृत, रेमण्ड चैपमैन, 'बियोंड द सेंटेंस', लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड लिटरेचर (लण्डन : एडवर्ड आर्नल्ड लिमिटेड, 1973), पृ०101
5. एच. जी. विड्डोसन, स्टाइलिस्टिक्स ऐण्ड द टीचिंग ऑव लिटरेचर(लण्डन : लौंगमैन, 1975), पृ० 33
6. रेमण्ड चैपमैन, 'ग्लॉसरी ऑफ लिंग्विस्टिक्स टर्म्ज,' लिंग्विस्टिक्स ऐन्ड लिटरेचर (लंदन : एडवर्ड आर्नल्ड लिमिटेड, पुनर्मुद्रण, 1974), पृ० 14

1.5.1.9. 'एक प्रोक्ति प्रायः बहुतेरे वाक्यों से बनी एक पूर्ण और आत्म-अन्तर्विष्ट पाठ है।'[1]

1.5.1.10 प्रोक्ति के रूप मे किसी भी कथन-शृंखला को पहचानने की योग्यता परस्परग्रथित रूप में अंशतः भाषिकीय ज्ञान पर और अंशतः उस सम्पूर्ण संदर्भ के अभिज्ञान पर सामने आती है, जिसमें शब्द इसके अन्तर्गत बहुतेरे प्रसंगों के भाग और उसके परिसीमन की रचना करते हैं।'[2]

1.5.1.11 संक्षेप मे प्रोक्ति को स्वाभाविक भाषा के ऐसे अभिव्यक्ति प्रकार के बतौर परिभाषित किया जा सकता है जो वाक्यों के वैसे अनुक्रम को साकार करता है, जिसमे गुणों को परितुष्ट करने की क्षमता होती है। वाक्यात्मक स्तर पर वाक्यों की अनुपाती व्याकरणात्मकता की अपेक्षा प्रोक्ति द्वारा अभिव्यंजित वाक्यो के अनुक्रम के पाठात्मक स्वरूप को परिभाषित करने वाली सर्वाधिक सुस्पष्ट विशेषता सभंजसता की अर्थीय गुणात्मकता है।[3]

1.5.2. हिन्दी परिभाषाएँ :

हिन्दी मे गोस्वामी, भाटिया, श्रीवास्तव, शीतांशु एवं ओमप्रकाश की परिभाषाएँ द्रष्टव्य हैं—

1.5.2.1. 'प्रोक्ति वाक्योपरि स्तर की एक ऐसी इकाई है, जिसके कथ्य में आंतरिक संसक्ति या संयोजन तथा वाक्यों में संदर्भपरक और तर्कपूर्ण अनुक्रम रहता है।'[4]

1.5.2.2. 'अनेक वाक्य मिलकर सर्वांग रूप से जब इकाई रूप बन जाते हैं, तब यह इकाई ही 'वाक्यबन्ध' या 'प्रोक्ति' कहलाती है।'[5]

---

1. ए. आर. मीयम (सम्पा.), इन्साइक्लोपीडिया ऑव लिंग्विस्टिक्स, इनफॉर्मेशन, ऐण्ड कंट्रोल (ऑक्सफोर्ड : पर्गमान प्रेस, 1969), पृ० 654
2. ए. डी. एडवर्ड्ज, लैंग्वेज इन कल्चर ऐण्ड क्लास (लण्डन : हेनिमन एजुकेशनल बुक्स लिमिटेड,1976), पृ० 55
3. टी. ए. वानडिज्क, 'सिमेंटिक रिलेशंज इन डिस्कोर्स' स्टडीज इन द प्रेग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग : मूतन, 1981), पृ० 268
4. कृष्णकुमार गोस्वामी, शैक्षिकव्याकरण और व्यावहारिक हिन्दी (दिल्ली। आलेख प्रकाशन, 1981), पृ० 95
5. कैलाश चन्द्र भाटिया, 'प्रोक्ति संरचना', परिषद पत्रिका, सम्पा, श्रीरंजन सूरिदेव (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् जुलाई 1980), पृ० 80

1.5.2.3. 'प्रोक्ति या पाठ वाक्यों का मात्र जमघट न होकर उनकी संरचनात्मक या दूसरे अर्थ में कहें तो सर्जनात्मक रूपान्तरण होता है।'[1]

1.5.2.4. 'एक प्रोक्ति उस अर्थवत्ता और साभिप्रायता को उजागर करती है, जो बिखरे हुए वाक्यों में उजागर नहीं हो सकती, शब्दों का एक अनुक्रम, जो एक अस्वीकार्य वाक्य का प्रकटन होता है, एक सम्पूर्ण संरचना में ही स्वीकार्य हो सकता है।'[2]

1.5.2.5. 'भाषा का मूल प्रकार्य सम्प्रेषणीयता है, पर उसका सम्पादन प्रायः वाक्य द्वारा संभव नही है। अतः वाक्य को भाषा की इकाई निश्चित करने या स्वीकार करने में सहज कठिनाई आती है। सम्प्रेषणीयता की इस दृष्टि से वस्तुतः जो भाषिक व्यापार सम्पादित होता है, उसका स्तर वाक्यातीत हुआ करता है और प्रोक्ति इसी वाक्यातीत स्तर की सार्थक इकाई का नाम है।'[3]

1.5.2.6. 'प्रोक्ति वह वाक्योपरि संरचना है, जिसमें वाक्य से आगे फैली सार्थक इकाई समाहित होती है।'[4]

1. 6. प्रोक्ति : स्वरूप-निरूपण :

प्रोक्ति-विषयक उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से प्रोक्ति की निम्नलिखित स्वरूपगत विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

1.6.1. प्रोक्ति की पहली स्वरूपगत विशेषता उसके एकाधिक या अनेक वाक्यों का समुच्चय होने की है, यद्यपि कभी-कभी एक पूर्ण वाक्य स्वरूपतः प्रोक्ति नहीं होकर भी प्रकार्यतः प्रोक्ति के बतौर अपनी भूमिका निभा सकता है। जिस तरह कभी-कभी एक शब्द स्वरूपतः वाक्य न होकर भी वाक्य का काम करता है, उसी तरह कभी-कभी एक वाक्य स्वरूपतः प्रोक्ति न होकर भी प्रोक्ति की भूमिका में उपस्थित होता है।

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन 1979), पृ० 96
2. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 65-66
3. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', भारती की काव्यभाषा (करनाल : नटराज पब्लिशिंग हाऊस, 1985), पृ० 90
4. ओमप्रकाश शर्मा प्रकाश, 'प्रोक्ति संरचना', हिन्दी भाषा : प्रयोग के स्तर (दिल्ली : पांडुलिपि प्रकाशन, 1982), पृ० 43

1.6.2. प्रोक्ति में वाक्यों का ठोस अनुक्रम होता है। इसे वाक्यों के बीच का व्यवस्थित सम्बन्ध भी कहा जा सकता है। प्रोक्ति केवल वाक्यों का समुच्चय नहीं होती है, बल्कि ऐसे वाक्यों का समुच्चय होती है, जो वाक्य परस्पर अन्तर्ग्रथित और अन्तस्सम्बद्ध होते हैं। असम्बद्ध वाक्यों की शृंखला को प्रोक्ति नहीं कहा जा सकता है। यहाँ जिस पारस्परिक स्वीकार्यता की बात की जाती है, उसके मूल में तार्किक संसक्ति क्रियाशील होती है। इसी के द्वारा प्रोक्ति की आन्तरिक संरचना तैयार होती है।

1.6.3. प्रोक्ति वाक्यों का ऐसा अनुक्रम होती है, जिसके पाठात्मक स्वरूप में 'संसक्ति के अतिरिक्त 'समंजसता' की अर्थीय गुणात्मकता विद्यमान होती है।

1.6.4. प्रोक्ति की चौथी स्वरूपगत विशेषता वाक्यांश और वाक्य तथा वाक्य और वाक्य को सम्बद्ध करने वाले भाषिक तत्वों के रूप में उपस्थित होती है। इसी दृष्टि से प्रोक्ति—*आवर्तन, सर्वनाम तथा योगात्मक, विकल्पात्मक* विरोधात्मक, कारणात्मक, व्याख्यात्मक निष्कर्षात्मक जैसे विभिन्न निपातों से स्वरूपित होती है। प्रोक्ति मे इससे ही अन्विति बनती है तथा तारतम्य आता है।

1.6.5. प्रोक्ति अपने स्वरूप में एक पूर्ण कथन या बयान होती है, जो सदर्भ के अनुरूप आत्मालापी, संलापी या सूचनात्मक—किसी भी प्रकार की हो सकती है। *इसे केवल सवादात्मकता की सीमा में बांधा नहीं जा सकता है।* इससे स्पष्ट होता है कि प्रोक्ति में सूचनात्मक संदेश होता है।

1.6.6. प्रोक्ति सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से भाषा की ऐसी सार्थक इकाई है, जिसमे तार्किक संसक्ति विद्यमान होती है। यह एक अन्तर-वैयक्तिक भाषिक सम्प्रेषण भी है, जहाँ भाषिक तत्वो का प्रकार्य सम्प्रेषणशील प्रभाव तक सक्रिय होता है।

1.6.7. प्रोक्ति भाषा की ऐसी पूर्ण इकाई है जिसकी लम्बाई की सीमा मुक्त होती है। इसकी प्रकृति बहुत लचीली होती है। आकार की दृष्टि से यह दो वाक्यों का भी समुच्चय हो सकती है और एक अनुच्छेद में भी स्वरूपित हो हो सकती है। यही नहीं, पूरी-की-पूरी रचना भी प्रोक्ति के रूप में स्वरूपित होती है, जिसके अन्तर्गत कई छोटी-छोटी प्रोक्तियों का समाहार होता है।

1.6.8. प्रोक्ति का स्वरूप प्रकार्यमूलक (Functional) होता है। इसके आधार पर ही प्रोक्ति के प्रकार्यों की पहचान सम्भव होती है। मुख्यतः प्रोक्ति या तो किसी विचार या संकल्पना को व्यक्त करती है या अन्तः वैयक्तिक सम्बंधों को निरूपित करती है, अथवा किसी पाठ की विषयवस्तु का ज्ञापन करती है।

1.7. प्रोक्ति : अनुभाग-रेखांकन :

यद्यपि प्रोक्ति के लिए किसी लघुतर या प्रदीर्घतर सीमा का प्रतिबंधन

नहीं है तथापि किसी प्रदीर्घ प्रोक्ति के सम्यक् अवबोध के लिए प्रोक्ति के अनुभागों का रेखांकन करना समीचीन है। प्रोक्ति के अनुभाग-रेखांकन पर लांगेकर-लेविनशन और सिक्लेयर-कूल्टहार्ड के महत्त्वपूर्ण विचार प्राप्त होते हैं।

1.7.1. लांगेकर-लेविनशन का अनुभाग-रेखांकन :

1.7.1.1. प्रवेशक (Aperture)
1.7.1.2. अग्रचरण (Stage)
1.7.1.3. शीर्ष (Marked Peak)
1.7.1.3.1. पूर्व शीर्ष कथांश (Pre-Peak Episodes)
1.7.1.3.2. उत्तर शीर्ष कथांश (Post-Peak Episodes)
1.7.1.3.3. अन्तर-शीर्ष कथांश (Inter-Peak Episodes)
1.7.1.4. वेष्ठक, (Closure) और
1.7.1.5. समापक (Finis)

1.7.1.1. प्रवेशक :

किसी भी प्रोक्ति के सूत्रात्मक आरम्भण को प्रवेशक (Aperture) कहा जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रोक्तियों में प्रवेशक के भिन्न-भिन्न रूप हो सकते हैं। निम्नलिखित कथात्मक प्रोक्तियाँ अपने सादृश्य-साचे में प्रवेशक की भूमिका में आयी हैं—

1.7.1.1. "झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए थे और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकल रही थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे।"

1.7.1.2. "शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अंगीठी सामने लिए बैठी हुई है। अंगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है।"

1.7.1.3. 'ओ मर कल मुंहे!' अकस्मात घोघा बुआ ने कूड़ा फेंकने के लिए दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे मिरवा को गाते हुए देखकर कहा— 'तोरे पेट मे फोनो-गिराफ उलियान बा का, जोन भिनसार भवा कि तान तोड़े लाग? राम जाने, रात के केसन एकरा दीदा लागत है।'

---

1. रॉबर्ट लांगेकर ऐंड स्टीफेन लेविनशन, 'फील्ड एनालिसिस ऑव डिस्कोर्स' करेंट ट्रेड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा० वूल्फगैंग यू० ड्रेसलर (बर्लिन : वाल्टर डी गूटर, 1978), पृ० 104-106

ऊपर की तीनों प्रोक्तियाँ क्रमश: प्रेमचन्द की 'कफन', जैनेन्द्र की 'पत्नी' और धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' कहानी की आरम्भिक प्रोक्तियाँ हैं। इनमें पहली उत्तरकीय है, दूसरी वर्णनात्मक और तीसरी मुख्यत: संलापात्मक। पर ये तीनों प्रोक्तियाँ प्रोक्ति-अनुभाग के बतौर 'प्रवेशक' हैं, क्योंकि इन्हीं प्रोक्तियों से तीनों कहानियाँ आरम्भ होती हैं।

1.7.1.2. अग्रचरण :

किसी भी कथात्मक प्रोक्ति में प्रवेशक अनुभाग के बाद जो प्रोक्ति-अनुभाग उपस्थित होता है, उसे अग्रचरण (Stage) कहा जाता है। किन्तु कथेतर प्रोक्तियों मे प्रोक्ति-अनुभाग के इस दूसरे चरण को परिचय (Introduction) कहते हैं। इस प्रकार कथात्मक और कथेतर प्रोक्तियो मे प्रवेशक के बाद का चरण अग्रचरण और परिचय के बतौर रेखांकित किया जाता है। प्रोक्ति के मुख्य भाग (Body of Discourse) मे कथांश (Episodes) प्राप्त होते हैं, जो कथात्मक प्रोक्ति मे खाँचे के बतौर उपस्थित रहते हैं। इनसे अलग व्यवहारपरक तथा व्याख्यात्मक प्रोक्तियों में खांचो के रूप मे बिन्दु (Points) प्राप्त होते हैं, प्रक्रियात्मक प्रोक्ति में क्रिया-विधि (Procedures) होती है और नाटक की संलापात्मक प्रोक्ति मे अंक (Acts) का विधान होता है।

1.7.1.3. शीर्ष :

यदि प्रोक्ति तनाव से भरी होती है तो उसके विकास में चरम सीमा के दर्शन होते हैं। यह बहिस्तलीय संरचना का रेखांकित शीर्ष (Marked Peak) होता है। कथात्मक प्रोक्ति में यह शीर्ष गहन संरचना के संघर्षपूर्ण अंश को रेखांकित करता उसके निर्वहण को भी उपस्थित करता है। निर्वहण उस बिंदु पर उपस्थित होता है, जहाँ निर्णायक घटना कथा को शिथिल कर सम्भावित प्रस्तावना प्रस्तुत करती है।

कथात्मक प्रोक्ति का तीसरा अनुभाग शीर्ष का होता है। इसकी तीन कोटियाँ होती हैं—1.7.3.1. पूर्व शीर्ष-कथांश, 1.7.3.2. उत्तर शीर्ष-कथांश और 1.7.3.3. अन्तर शीर्ष-कथांश।

कथेतर प्रोक्तियों में जब प्रोक्ति अपनी विकसनशीलता मे शीर्ष तक पहुँचती है, तब उसके प्रकार-भेद से इस शीर्ष का नामकरण किया जाता है। यदि यह प्रक्रियात्मक प्रोक्ति है, तो वहाँ यह शीर्ष-बिन्दु प्रक्रिया का होता है। यदि यह व्यवहारमूलक प्रोक्ति है और उसमें भी उपदेशात्मक प्रकृति की है तो शीर्षबिन्दु चरम प्रबोधन का होता है और यदि प्रोक्ति व्याख्यात्मक है तो वहाँ शीर्ष बिन्दु परम परितोष प्रदत्त का अथवा चरम व्याख्या का होता है।

ऊपर निर्दिष्ट प्रकार्यात्मक खांचों में से प्रत्येक खांचा या तो एक अनुच्छेद

के द्वारा स्पष्टोक्त होता है अथवा किसी सन्निहित प्रोक्ति के द्वारा समझाया जाता है। पर ऐसा भी नही है कि एक सन्निहित प्रोक्ति की बिल्कुल वही संरचना होती है जो एक असन्निहित मुक्त प्रोक्ति नही।

शीर्ष और बहिस्तलीय सरचना-शीर्ष के रेखांकन के निम्नलिखित मार्ग हैं :

(1) इसका पहला मार्ग भाषणशास्त्रीय और आलंकारिक रेखांकन का है, जहाँ अन्वयन और आवर्त्तन का व्यवहार होता है।

(2) इसका दूसरा मार्ग प्रतिभागियों के केन्द्रण का है। वहाँ अनेक प्रतिभागी इकट्ठे उपस्थित होते हैं।

(3) इसके रेखांकन का तीसरा मार्ग काल-अंतरण के द्वारा प्राप्त काष्ठागत तीक्ष्णता का है। ऐसे अंतरण मे अतीत से ऐतिहासिक वर्तमान में किया जाने वाला काल-अन्तरण, पुरुष-अन्तरण—जैसे अन्य पुरुष के उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष में अन्तरण, कथात्मकता से नाटकीय वार्तालाप में अन्तरण अथवा नाद सौंदर्यवाले अनुरणात्मक शब्दों के जरिये उपस्थित होने वाले अंतरण आते हैं।

(4) चौथा प्रकार इकाइयों के आकार-वैशिष्ट्य के द्वारा गति और वेग को नियंत्रित करने की दृष्टि से संभव होता है अथवा अल्पतम संयोजकों के व्यवहार तथा दूसरे परिवर्तन—संकेतों के द्वारा संभव होता है।

1.7.1.4. वेष्ठक :

किसी भी कलात्मक प्रोक्ति में वह अनुभाग वहाँ होता है जहाँ पूरी कथा-प्रोक्ति के समापन (Finis) के पूर्व प्रोक्ति को उस रूप में वेष्ठित किया जाने लगता है जो रूप उस प्रोक्ति-विशेष के कथ्य के अनुरूप सुनिश्चित होता है। निम्नलिखित कथात्मक प्रोक्तियाँ वेष्ठक (Closure) अनुभाग का उदाहरण हैं—

(1) घीसू ने समझाया—क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह मायाजाल से मुक्त हो गयी। जंजाल से छूट गयी बड़ी भाग्यवान थी जो इतनी जल्द माया-मोह के बंधन तोड़ दिये।

(2) कालिन्दी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा—अचार लाना भाई अचार, मानों सुनन्दा कहीं बहुत दूर हो, पर वह तो बाहर लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप *अचार लाकर रख दिया। जाने लगी तो कालिन्दी ने तनिक स्निग्ध* वाणी से कहा—थोड़ा पानी भी लाना।

उपर्युक्त दोनों प्रोक्तियाँ समापन की तुरंत पहले की भूमिका में क्रियाशील हैं, जहाँ कथात्मकता अब वेष्ठित होने लगी है।

1.7.1.5. समापन :

कथात्मक प्रोक्ति का अनुभाग जहाँ पटाक्षेप होता है, इसे ही अन्तिम समापन अनुभाग कहते हैं।

1.7.2. सिंक्लेयर-कूल्टहार्ड का अनुभाग-रेखांकन :

सिंक्लेयर और कूल्टहार्ड द्वारा किया गया प्रोक्ति का अनुभाग—रेखांकन[1] श्रेणीमाप (Rankscale) प्रतिमान पर आधारित है। इन दोनों के अनुसार प्रोक्ति को चार अनुभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि सिंक्लेयर-कूल्टहार्ड ने प्रोक्ति का यह अनुभाग-रेखांकन कक्षा-पाठीय प्रोक्ति के संदर्भ में किया है, तथापि यत्किंचित् अभिवर्धन से किसी भी प्रकार की प्रोक्ति के प्रसंग में उनका यह अनुभाग-रेखांकन सही माना जाएगा। दोनों विवेचकों के द्वारा निर्दिष्ट प्रोक्ति के चार अनुभाग निम्नलिखित हैं—1.7.2.1. कार्य-विवरण (Transaction), 1.7.2.2. विनिमय (Exchange), 1.7.2.3. प्रगमन (Move), और 1.7.2.4. कार्य (Act)। यहाँ 1.7.2.2. में निर्दिष्ट 'विनिमय' को 'उक्ति' (Utterance) की सहवर्ती या विकल्पात्मक स्थिति में स्वीकार कर लेने मात्र से यह अनुभाग-रेखांकन अत्यंत समीचीन बन जाता है।

1.7.2.1. कार्य-विवरण :

किसी भी प्रोक्ति में कम-से-कम एक कार्य-विवरण अवश्य होता है जो किसी संदर्भ में उपस्थित होता है। प्रोक्ति के अंतर्गत इसकी संख्या अधिकाधिक भी हो सकती है। इस दृष्टि से इसे प्रोक्ति का मुख्य रचक माना जाता है।

कार्य-विवरण सीमांत-आरंभक से, संकेन्द्रक से या उद्घाटक प्रगमन से आरम्भ होते हैं। अतः कार्य-विवरण के सीमान्त की पहचान का आधार भी वही होता है, जो प्रगमन के आरम्भ के लिए होता है। कार्यविवरण स्वतः विकल्पात्मक सुस्पष्ट सीमा विनिमय से, ऐसे अनिवार्य वार्तालापी विनिमय से बनता है, जिसमें उद्घाटक प्रगमन प्रवर्तक के रूप में हो। यह वैसे क्रमहीन वार्तालापी विनिमय से बनता है, जिसमें बद्ध उद्घाटक, पुनः उद्घाटक और चुनौतीपरक उसके प्रवर्तक के रूप में उपस्थित हो।

1.7.2.2. उक्ति बनाम विनिमय :

किसी भी प्रोक्ति के अन्तर्गत उक्ति (Utterance) और विनिमय (Exchange) दोनों का संयोग संभव है। उक्ति में एक वक्ता का योगदान होता है, जबकि 'विनिमय' के लिए दो वक्ताओं—वक्ता-श्रोता और श्रोता वक्ता—का योगदान अपेक्षित होता है।

---

1. जे० मैक० सिंक्लेयर और आर०एम० कूल्टहार्ड, टुवार्ड्ज ऐन एनालिसिस अव डिस्कोर्स : द इंगलिश यूज्ड बाई टीचर्स ऐंड प्यूपिल्स (लंडन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975), पृ० 21

बर्टन ने दो प्रकार के विनिमयों का उल्लेख किया है—

1.7.2.2.1. सुस्पष्ट सीमा-विनिमय ।

1.7.2.2. वार्तालापी विनिमय ।

1.7.2.3. प्रगमन :

प्रोक्ति में उक्ति से लघुतर इकाई को 'प्रगमन' कहा जाता है । एक उक्ति में कई 'प्रगमन' संभव है । उदाहरण के लिए कक्षा-अध्यापन के क्रम में उपस्थित निम्नलिखित प्रोक्ति को देखा जा सकता है—

'पेरिस, ठीक है ।'

'और सुधा, स्वीडेन की राजधानी' ?

इस उदाहरण में अध्यापक की उक्ति के दो भाग हैं। पहले भाग में उत्तर सही होने का उल्लेख है, और दूसरे भाग में दूसरे से किया गया ताजा प्रश्न है। इन दोनों को दो 'प्रगमन' के रूप मे रेखांकित किया जाएगा।

'प्रगमन' के सात प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं—1.7.2.3.1. सीमांतक आरम्भक (Framing), 1.7.2.3.2. संकेन्द्रक (Focusing), 1.7.2.3.3 उद्घाटक (Opening), 1.7.2.3.4. समर्थक (Supporting), 1.7.2.3.5. चुनौती परक(Challenging),1.7.2.3.6. बद्ध उद्घाटक(Boundopening) और 1.7.2.3.7. पुनः उद्घाटक (Re-Opening) ।

1.7.2.3.1. सीमांतक आरंभक :

यह प्रायः शीर्ष (Head) से बनता है, जो या तो रेखांकक (Marker) होता है या एक आह्वान (Summon) होता है और विशेषक (Qualifier) के बतौर मौन दबाव डालता है । यह कार्य-विवरण के सीमांत का सुस्पष्ट रेखांकक होता है और ऐसे कार्य (Act) को समाविष्ट करता है, जो अपने-आप में ध्यान खींचने वाले पूर्व प्रतिपाद्य (Pre-theme) एकक होते हैं।

1.7.2.3.2. संकेन्द्रक :

संकेन्द्रक अपने अंतर्गत विकल्पात्मक संकेत को समाविष्ट करता है। विकल्पात्मक पूर्वशीर्ष (आरंभिक) अनिवार्य शीर्ष (अधिकथन या निष्कर्ष) और विकल्पात्मक उत्तरशीर्ष (टिप्पणी) के द्वारा अनुसरित होता है। 'सीमांतक-आरंभक' की तरह 'संकेन्द्रक' भी कार्य-विवरण के सीमांत का सुस्पष्ट रेखांकक होता है तथा ध्यानाकर्षी पूर्वप्रतिपाद्य एकक को अपने में समाविष्ट करता है।

1.7.2.3.3. उद्घाटक :

'उद्घाटक' 'कार्यविवरण' के आरंभ पर आधारित होते हैं। इसमें पहचान

के आधार वे ही होते हैं, जो कार्य-विवरण के सीमांत के होते हैं, पर वहाँ 'सीमांतक-आरंभक' और 'संकेन्द्रक' क्रियान्वित नहीं होते हैं। यहाँ केवल सूचनात्मक, निर्देशात्मक और उत्पादक सामने आते हैं। तात्कालिक 'उक्ति' के प्रति इसका कोई अभिवृत्तिपरक संदर्भन भी उपस्थित नहीं होता है। हाँ, यहाँ पहले प्रस्तुत होने वाली 'उक्ति' को 'कार्य-विवरण' की निष्कर्षात्मक 'उक्ति' के बतौर भी देखा जाता है। कभी-कभी आंकड़ों की आन्तरिक समस्याएं भी उपस्थित होती हैं, जहाँ नये 'कार्य-विवरण' की पहचान की जाती है। पर यहाँ किसी दूसरे वक्ता द्वारा व्यक्त अगली उक्ति कुछ ऐसा जोड़ देती है, जिसे सामान्य तौर पर पहले प्रस्तुत कार्यविवरणारम्भ की 'उक्ति' द्वारा बन्द किये गये कार्यविवरण की उक्ति के बतौर जाना जा सकता है। जहाँ ऐसा घटित होता है वहाँ समापन और आरम्भक के परस्पराच्छादन के उदाहरण प्राप्त होते हैं, न कि नये कार्य-विवरण का अनुक्रमण प्राप्त होता है। उद्घाटक प्रगमन अनिवार्य तौर पर प्रतिपाद्य को ले चलने वाले एकक के बतौर उपस्थित होते हैं, जिनकी पहचान तत्काल आगे बढ़ने वाली बातचीत में 'नूतन' के बतौर की जाती है। यहाँ के कार्यविवरणारम्भ से आरम्भ नहीं होते। वे सीधे तौर पर 'सीमांतक-आरंभक' या 'संकेन्द्रक' का अनुगमन करते हैं। यहाँ इनका व्यवहार सहप्रतिभागी का ध्यान खींचने के लिए अथवा यह घोषित करने के लिए किया जाता है कि एक नया विषय उपस्थित होने वाला है।

1. 7. 2. 3. 4. समर्थक :

समर्थक प्रगमन प्रगमन (Move) के अन्य प्रकारों के बाद उपस्थित होता है। प्राय, आंकड़ों के आधार पर यह पाया गया है कि इस प्रगमन की शृंखलाएं बनती हैं। अनिवार्य तौर पर समर्थक की धारणा उन एककों को समाविष्ट करती है जो समर्थन करने वाले आरंभिक प्रगमन को सहयोग देती है। आशय यह कि इन शृंखलाओं में प्रत्येक समर्थक प्रगमन को पीछे आये अन्य छह प्रकार के प्रगमन के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। इस रूप में एक समर्थक प्रगमन तथ्यतः दूसरे समर्थक प्रगमन का जहाँ अनुगमन करता है, वहाँ प्रकार्य के बतौर यह पहले आ चुके किसी आरंभिक प्रगमन का ही समर्थन करता है। ध्यातव्य है कि समर्थक प्रगमन की पहचान वस्तुतः प्रोक्ति-सांचे की अवधारणा पर निर्भर होती है।

1.7.2.3.4.1 प्रोक्ति-साँचा :

प्रोक्ति-सांचा विनिमय के आरंभिक प्रगमन में सुनिश्चित पूर्वानुमान से संबंध रखता है। यहाँ प्रगमन में समर्थक को छोड़कर अन्य कोई भी प्रगमन लिया जा

सकता है। अन्योन्य क्रिया की कोई भी प्रत्याशा उस प्रगमन पर निर्भर होती है। प्रोक्ति-साँचा, जो किसी आरम्भिक प्रगमन के द्वारा संगठित होता है, के दो पहलू होते हैं। इसे डिअड्र बर्टन ने हैलीडे का अनुसरण करते हुए दो रूपों में निर्दिष्ट किया है।—1.7.2.3.4.1 1. विचारात्मक और पाठात्मक (IDeational) और 1.7.2.3.4.1.2. अन्तर-वैयक्तिक (Inter-Personal).

1.7.2.3.4.1.1. विचारात्मक और पाठात्मक पहलू :

विचारात्मक और पाठात्मक पहलू को शब्द-अक्षीय रूप में परिभाषित किया जाता है। इसे किसी भी आरम्भिक प्रगमन के विषय-घटक में व्यवहृत शाब्दिक-एककों में पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रगमन-निर्भर प्रोक्ति का साँचा उन सारे एककों को समाविष्ट करता है जिन्हें प्रगमन के साथ संसक्त रूप में समर्वाजत किया जा सकता है। हैलीडे और हसन के अनुरूप ये एकक स्थानापन्न, अध्याहार, सहयोजन और शाब्दिक संसक्ति के एकक हैं।

1.7.2.3.4.1.2. अन्तर-वैयक्तिक पहलू :

अन्तर-वैयक्तिकता का पहलू अन्तर-निर्भर या पारस्परिक विनिमय के कार्यों से सम्बन्ध रखता है। यहाँ कुछ आरंभिक कार्य कुछ अनुक्रियात्मक कार्य के लिए प्रत्याशाओं को संघटित करते हैं। यहां प्रोक्ति-साँचा पूर्व विषय के अनुरूप व्यवहृत कार्यों से अलग रूप मे पुनः प्राप्त किया जा सकता है। उसी तरह से विषय-संवाही प्रगमन मे व्यवहृत कार्यों से भी अलग रूप में प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ पूर्व-विषय में व्यवहृत कार्यों से कार्य-विवरण के विकल्पात्मक आरम्भिक प्रगमन—सीमांतक-आरंभक और संकेन्द्रक—का आग्रहण अभीष्ट है। उसी तरह विषय-संवाही प्रगमनों मे व्यवहृत कार्यों से कार्य-विवरण के अनिवार्य आरंभिक प्रगमन और अनुगत—पुनः उद्घाटक, बद्ध उद्घाटक और चुनौतीपरक—का आग्रहण अभीष्ट है। पूर्व के कार्य (Acts) अपने-आप में निम्नलिखित का समावेश करते हैं।—(1)रेखांकक (Markers). (2) आह्वान(Summons) और (3) अधिबयान (Meta Statements)।

विषय के संवाहक कार्य निम्नलिखित को अपने-आप मे समाविष्ट करते हैं—

1. सूचनात्मक (Informatives)
2. प्रकाशात्मक (Elicitatious)

---

1. डिअड्र बर्टन, डायलाग ऐंड डिस्कोर्स (लंदन : रूटलेज एंड कीगेन पॉल, 1984. पेपर बैक, 1984), पृ० 149

3. निर्देशात्मक (Directives)
4. आरोपक (Accusations)

यदि इन आरम्भिक कार्यों में समुचित और प्रत्याशित द्वितीय युग्म भागों को जोड़ दिया जाये तो प्रोक्ति-सांचे का अन्तर-वैयक्तिक पहलू निम्नलिखित रूप में उपस्थित होगा—

1. रेखांकक (Marker)—पावती अवधानन (Acknowledge) अनुकूल और अविरोधी-मान-सहित।
2. आह्वान (Summons) —स्वीकृति (Acceptance)
3. अधिवयान (Metastatement)—स्वीकृति (Acceptance)
4. सूचनात्मक (Informative) —पावती (Acknowledgement)
5. प्रकाशन (Elicitation) —उत्तर (Reply)
6. निर्देशात्मक (Directive) —प्रतिक्रिया (Reaction)
7. आरोप (Accuse) —क्षमा (Excuse)

प्रोक्ति सांचे की उक्त धारणा के अनुरूप समर्थक प्रगमन वह प्रगमन है जो पूर्ववर्ती आरम्भिक प्रगमन के द्वारा संघटित सांचे को समर्थित करता है। यदि वक्ता 'अ' सांचे को संघटित करता है और वक्ता 'ब' इसे समर्थित करता है तो वक्ता 'अ' भी इसे समर्थित कर सकता है। इसके मूल में सामान्यतः यह विचार निहित है कि आकस्मिक बातचीत में वक्ता पूर्व वक्ता की अपेक्षा पूर्व पाठांश को समर्थित कर सकता है।

1.7.2.3.5. चुनौतीपरक :

जहाँ समर्थक प्रगमन पूर्व उक्ति में उपस्थित विषय को आगे बढ़ाने का कार्य करता है अथवा किसी पूर्व उक्ति में अन्तर्हित विषय के योगदान को आगे बढ़ाता है वहाँ आपत्तिकारी प्रगमन किसी-न-किसी रूप में विषय-प्रवेश अथवा विषय की प्रगति को रोकने का कार्य करता है। ऐसी प्रोक्तियाँ किसी भी प्रगमन के बाद उपस्थित हो सकती हैं। अपवाद वहाँ होता है जहाँ कोई द्विपक्षीय वार्ता किसी समर्थक प्रगमन से अनुसरित हो रही है। आपत्तिकारी प्रगमन के विभिन्न प्रकार हैं, जिनकी पहचान तीन विभिन्न अवधारणाओं पर निर्भर है—

1.7.2.3.5.1. प्रोक्ति—सांचे की पूर्वोल्लिखित धारणा,
1.7.2.3.5.2. प्रोक्ति-विषय के चरणों की धारणा जो कीनन और शीफ़लीन के द्वारा उपस्थित की गयी है, और
1.7.2.3.5.3. लेबाव के द्वारा सुझाया गया किसी क्रिया के लिए आग्रह के बतौर किसी उक्ति के हेतु आवश्यक पूर्व शर्तों का विस्तार।

1.7.2.3.5.1. चुनौतीपरक प्रगमन और प्रोक्ति-सांचा :

एक सरल प्रकार का चुनौतीपरक प्रगमन किसी प्रत्याशित और उपयुक्त पारस्परिक कार्य को रोकने से उत्पन्न होता है। ऐसे कार्य की प्रत्याशा पूर्ववर्ती आरम्भिक प्रगमन में ही संघटित हो सकती है। इस प्रकार किसी प्रकाशन के बाद उत्तर की अनुपस्थिति वक्ता के अधिकार के लिए किये गये आग्रह के अभिध्यान की स्वीकृति चुनौती बनकर सामने आती है। इसी तरह चुनौतीपरक प्रगमन अप्रत्याशित और असमीचीन कार्य के मुहैया किये जाने से भी उभरता है, जहां दूसरे के लिए प्रत्याशा पहले से संघटित रहती है। उदाहरण के लिए प्रगमन किसी ऐसे रेखांकक को पेश करने के जरिये उभरता है, जहाँ प्रतिक्रिया समीचीन रूप में निर्दिष्ट होती हैं। इसके सर्वातिशायी छोर पर व्यवस्था के द्वारा यह चुनौती आगे बढ़ती है और नये कार्य-विवरण का उद्घाटन करती है।

यद्यपि बर्टन ने स्मृति-विषयक चुनौती को लेते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि यह अनिवार्य तौर पर विरोधिता को दर्शाये यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि कोई भी चुनौतीपरक प्रगमन जारी वार्ता को सौहार्दपूर्ण रूप में मोड़ सकता है।

1.7.2.3.5.2. चुनौतीपरक प्रगमन और प्रोक्ति-विषय के चरण :

कीनन और शीफलीन ने प्रोक्ति-अवधारणा के विषय पर अपना महत्त्वपूर्ण आलेख प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि वक्ता की ओर से श्रोता को विषय की सुस्पष्ट जानकारी देने के लिए निम्नलिखित चार चरणों की अपेक्षा होती है।

(1) वक्ता को श्रोता का ध्यान निश्चित करना चाहिए।

(2) वक्ता को स्पष्ट तौर पर साफ-साफ उच्चारण करना चाहिए।

(3) श्रोता के लिए वक्ता को प्रभूत सूचनाएं मुहैया करनी चाहिए, जिससे वस्तु, व्यक्ति और विचारधारा की जो प्रोक्ति विषय में अन्तर्मुक्त हैं, उसकी पहचान की जा सके।

(4) वक्ता को श्रोता के लिए प्रभूत सूचना मुहैया करनी चाहिए, जिससे प्रोक्ति-विषय में संकेतकों के बीच उपलब्ध अर्थीय संबन्धों को पुनर्निर्मित किया जा सके।

चुनौतीपरक प्रगमनो के रूप में पुनः सूत्रबद्ध करने के लिए श्रोता ऊपर निर्दिष्ट स्थिति में निम्नलिखित चार प्रकार की चुनौतियों मे से कोई एक चुनौती पेश कर सकता है। चाहे वह विरोध में हो या उसकी समर्थ ग्रहणशीलता के कारण हो—

(1) वह ध्यान देने से इन्कार कर सकता है।

(2) वह उक्ति के आवर्तन के लिए पुनः आग्रह कर सकता है।

(3) वह प्रोक्ति-विषय मे समाविष्ट वस्तुओं, व्यक्तियों और विचारों की

पहचान के विषय मे सूचना का स्पष्टीकरण माँग सकता है। वह प्रोक्ति-विषय मे संकेतको के बीच उपलब्ध अर्थीय सम्बंधो से जुड़ी अधिकाधिक सूचनाओं की मांग कर सकता है।

1.7.2.3.5.3. चुनौतीपरक प्रगमन और लेबाव के निर्वचन-विषयक नियम:

लेबाव ने अपने अन्यतम रूप मे निर्वचन के उपयोगी नियमों में 'कथित' और 'कृत' को जोडते हुए प्रोक्ति के निर्वचन के सम्बध मे कार्याग्रह के बतौर एक सामान्य नियम पेश किया है— यदि 'अ' 'ब' से 'क्ष' कार्य सम्पन्न करने के लिए 'ञ' समय पर निवेदन करता है, तो 'अ' की उक्ति तभी एक मान्य निर्देश के रूप में उपस्थित होगी, यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हैं—'ब' विश्वास करता है कि 'अ' विश्वास करता है कि यह 'अ'—'ब' का विषय है कि

(1) 'क्ष' को 'ञ' उद्देश्य के लिए सम्पन्न किया जाना चाहिए।
(2) 'ब' में 'क्ष' को सम्पन्न करने की योग्यता है।
(3) 'ब' को 'क्ष' सम्पन्न करने की बाध्यता है।
(4) 'अ' को 'क्ष' सम्पन्न करने के लिए 'ब' को कहने का अधिकार है।

डिअड्रे बर्टन ने उक्त चार के अतिरिक्त कुछ और पूर्व शर्तों की उक्ति को मान्य सूचनात्मक या मान्य प्रकाशात्मक के रूप मे सुनने के लिए प्रस्तावित किया है—यदि 'अ' 'ब' को 'ड' सूचना का एक अंश सूचित करता है तो 'अ' की उक्ति तभी मान्य सूचनात्मक रूप मे सुनी जायेगी यदि निम्नलिखित पूर्व शर्तें पूरी होंगी : 'ब' विश्वास करता है कि 'अ' विश्वास करता है कि 'अ'-'ब' का विषय है कि—

(5) 'अ' 'ब' को 'ड' सूचना देने की स्थिति में है।
(6) 'ड' सूचना का एक युक्तियुक्त भाग है।
(7) 'ब' 'ड' सूचना को नही जानता है।
(8) 'ब' 'ड' सूचना में रुचि रखता है।
(9) 'ब' 'ड' सूचना के द्वारा न तो रुष्ट किया गया है न ही अपमानित।

यदि 'अ' 'ब' से 'ञ' प्रश्न के विषय में 'ब' की भाषिक अनुक्रिया के विषय मे पूछता है तो यह तभी मान्य प्रकाशन समझा जायेगा यदि यह निम्नलिखित पूर्व शर्तें पूरी करता है—'अ' विश्वास करता है, कि 'ब' विश्वास करता है है कि यह 'अ'-'ब' का विषय है कि—

(10) कि 'ब' 'ञ' प्रश्न को समीचीन प्रश्न के रूप मे सुनता है।
(11) 'अ' 'ञ' को नही जानता है।
(12) यह सम्भव है कि 'ब' 'ञ' को जानता है।
(13) यह ऐसा मामला है कि 'अ' को 'ञ' प्रश्न कहा जा सकता है।

(14) यह ऐसा मामला है कि 'अ' को 'अ' को कहे जाने मे 'ब' को कोई आपत्ति नहीं है।

1.7.2.3.6. बद्ध उद्‌घाटक :

बद्ध उद्‌घाटक-प्रगमन पहले आये उद्‌घाटक के बाद आता है तथा उसके द्वारा समर्थित होता है। यह विशेष रूप मे प्रोक्ति-साँचे को मूल उद्‌घाटक-प्रगमन के विचारात्मक-पाठात्मक पहलू को विस्तारित करते हुए और वार्ता में उपस्थित सूचनात्मक और टिप्पणात्मक कार्यों के विविध प्रकारो को अनुप्रयुक्त करते हुए बढ़ा देता है।

1.7.2.3.7. पुन : उद्‌घाटक :

पुनः उद्‌घाटक-प्रगमन पूर्व उद्‌घाटक के बाद उपस्थित होता है। बद्ध उद्‌घाटक या पुनः उद्‌घाटक को चुनौती प्राप्त होती है। ये विषय को पुनः प्रतिष्ठित करते हैं जिससे कि चुनौती या तो मुड़ जाती है या विलम्बित हो जाती है।

1.7.2.4. कार्य :

'कार्य' को प्रोक्ति की न्यूनतम इकाई माना जाता है। इसकी तुलना में प्रगमन न्यूनतम मुक्त अन्तर-सक्रिय इकाई है, जो किसी एक कार्य के द्वारा क्रियान्वित होता है। पर कार्य इसके विपरीत अनिवार्य रूप मे बद्ध इकाई है। सिक्लेयर-कूल्टहार्ड ने 22 प्रकार के विभिन्न कार्यों की एक तालिका ही प्रस्तुत कर दी है।

1 8 प्रोक्ति : प्रकार-विवेचन :

प्रोक्ति का प्रकार-निर्देश कई आधारों पर किया जा सकता है। इनमें निम्नलिखित आधार महत्त्वपूर्ण हैं।

1.8.1. प्राचल-आधारित प्रकार
1.8.2. वार्तालाप-आधारित प्रकार
1 8.2. प्रयुक्ति-आधारित प्रकार
1.8.4. प्रकार्य-आधारित प्रकार

1.81. प्राचल-आधारित प्रकार :

इसके अंतर्गत प्रोक्ति के विभिन्न प्रकारों को दो प्राचलों के आधार पर निर्दिष्ट-विवेचित किया जाता है। पहले प्रकार के प्राचल को प्राथमिक प्राचल और दूसरे प्रकार के प्राचल को द्वितीयक प्राचल कहते हैं।[1]

---

1. रॉबर्ट लांगेकर और स्टीफेन लेविनशन, 'फील्ड एनालिसिस ऑव डिस्कोर्स', करेंट ट्रैंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स (न्यूयार्क : वाल्टर, डी. गूटर, 1978), पृ० 103-104

प्राथमिक प्राचल के अन्तर्गत प्रकार काल-क्रमागत-संयोजन और प्रकर्त्ता-अभिविन्यास पर निर्भर होता है, पर द्वितीयक प्राचल के अन्तर्गत यह प्रतिबिम्बित-काल और तनाव पर निर्भर होता है।

1.8.1.1. प्राथमिक प्राचल के संयोजन से चार प्रकार की प्रोक्तियों का स्वरूप उभरता है :

1.8.1.1.1. उत्तारकीय प्रोक्ति :

यह प्रोक्ति-काल-क्रमागत सयोजन और प्रकर्त्ता-उपस्थिति—दोनो की विधेयात्मकता में उभरती है।

1.8.1.1.2. प्रक्रियात्मक प्रोक्ति :

इसमें काल-क्रमागत संयोजन की विधेयात्मकता तो होती है, किन्तु प्रकर्त्ता-अवस्थिति ऋणात्मक होती है।

1.8.1.1.3. व्यवहारमूलक प्रोक्ति :

यह एक ऐसा प्रोक्ति-प्रकार है जिसके अनेक उपभेद प्राप्त होते हैं। इसमें काल-क्रमागत संयोजन तो ऋणात्मक होता है, किन्तु प्रकर्त्ता-अवस्थिति धनात्मक होती है।

1.8.1.1.4. व्याख्यात्मक प्रोक्ति :

इस प्रोक्ति में काल-क्रमागत संयोजन ऋणात्मक होता है, साथ ही प्रकर्त्ता-अवस्थिति भी ऋणात्मक होती है। ऐसा माना जाता है कि जहाँ कहीं भी ऋणात्मक कालक्रमी संयोजन निर्दिष्ट होता है वहाँ इसे अवधारणात्मक सयोजन से प्रोक्ति-प्रकार्य में अन्तरित किया जाता है। प्रोक्ति चाहे कालक्रमी हो या अवधारणात्मक-तार्किक, प्रत्येक प्रोक्ति मे संसक्ति के अपने सिद्धान्त होते हैं।

1.8.1.2. द्वितीयक प्राचल : इसके अन्तर्गत प्रोक्ति-प्रकारों की सघटना के मूल मे काल-प्रतिबिम्बन और तनाव दोनों क्रियाशील होते हैं।

1.8.12.1. द्वितीयक प्राचल : काल-प्रतिबिम्बन की सक्रियता :

1.8.1.2.1.1. उत्तारकीय प्रोक्ति :

इस प्राचल के अन्तर्गत जब काल-प्रतिबिम्बन सक्रिय होता है तब उत्तारकीय प्रोक्ति के अन्तर्गत सामान्य कहानी और भविष्यवाणी की प्रोक्ति के क्रमशः ऋणात्मक काल-प्रतिबिम्बन और धनात्मक काल-प्रतिबिम्बन जैसे दो रूप सामने आते हैं। इसी प्रकार प्रक्रियात्मक प्रोक्ति में सामान्य प्रक्रियात्मक पाठ काल-प्रतिबिम्बन की धनात्मकता से जुड़ा होता है। यहाँ अतीत के रीति-रिवाजों के

विवरण की प्रोक्ति-प्रक्रियात्मकता को ऋणात्मक काल-प्रतिबिम्बन में रेखांकित किया जाता है।

1.8.1.2.1.2. व्यावहारिक-प्रोक्ति :

इसमें उपदेशात्मक प्रोक्ति काल-प्रतिबिम्बन की धनात्मकता से जुड़ी होती है।

1.8.1.2.1.3. व्याख्यात्मक प्रोक्ति :

इसमें काल-प्रतिबिम्बन का महत्त्व नहीं होता है, किन्तु व्याख्यात्मक प्रोक्ति के कई ऐसे रूप हैं, जो घटना के भविष्यचरण का निर्देश देते हैं। ऐसे बहिर्वेशन (Extra Polation) स्पष्ट-तौर पर काल प्रतिबिम्बन की धनात्मकता से जुड़े होते हैं।

1.8.1.2.2. द्वितीयक प्राचल : तनाव की सक्रियता :

1.8.1.2.2.1. उत्तारकीय प्रोक्ति :

द्वितीयक प्राचल के अन्तर्गत जब तनाव सक्रिय होता है तब उत्तारकीय प्रोक्ति पूरी तरह उपाख्यानात्मक रूप में सामने आती है। यदि यह अनिवार्य तौर पर किसी संघर्ष या कथानक का संवहन नहीं करती है, तो ऐसी प्रोक्ति तनावरहित होती है। यहाँ तनाव के साथ उसका सम्बन्ध ऋणात्मक होता है।

1.8.1.2.2.2. प्रक्रियात्मक प्रोक्ति :

कुछ प्रोक्तियाँ रूटीनी हैं, जो कि कुछ संघर्षों और विकल्पों को अन्तर्भुक्त करती हैं। यहाँ उनके साथ तनाव का सम्बन्ध धनात्मक होता है।

1.8.1.2.2.3. व्यावहारिक और व्याख्यात्मक प्रोक्ति :

इन प्रोक्तियों की इतनी विविधताए हैं जिनमें तर्क-वितर्क और वाद-विवाद तक गृहीत हो जाते हैं। अतः ऐसी प्रोक्तियों के साथ भी तनाव का धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।

1.8.2. वार्तालाप-आधारित प्रकार :

वार्तालाप के आधार पर प्रोक्ति के दो प्रकार होते हैं :

1.8.2.1. संलापमूलक प्रोक्ति, और

1.8.2.2. एकालाप मूलक प्रोक्ति।

1.8.2.1. संलापमूलक प्रोक्ति :

संलाप में वक्ता और श्रोता दोनों का होना अपेक्षित है। इनके बीच में उक्ति के आदान-प्रदान से प्रोक्ति बनती है। उक्ति के आदान-प्रदान का अर्थ है कि वक्ता क्रमशः श्रोता की भूमिका में तथा श्रोता क्रमशः वक्ता की भूमिका में

आता रहता है। संलापमूलक प्रोक्ति के लिए आवश्यक है कि प्रोक्ति जिस आधार-भाषा में व्यापारित हो रही है, वह आधार-भाषा श्रोता और वक्ता दोनों को ही आती हो। संलापमूलक प्रोक्ति के दो भेद होते हैं—

1.8.2 1.1. गत्यात्मक संलापमूलक प्रोक्ति, और

1.8.2.1.2. स्थिर संलापमूलक प्रोक्ति।

1.8.2.1.1. गत्यात्मक संलापमूलक प्रोक्ति :

इसमें गतिशीलता वक्ता और श्रोता की भूमिका को निरन्तर बदलती चलती है। एक की प्रोक्ति दूसरे के लिए उद्दीपन बनती जाती है जिस पर पुनः-पुनः अनुक्रिया प्रकट होती रहती है। इस प्रकार गत्यात्मकता क्रियाशील होती जाती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित प्रोक्ति को लिया जा सकता है।

स्त्री : वैसे हजार बार कहोगे कि लड़के की नौकरी के लिए किसी से बात क्यों नहीं करती और जब मैं मौका निकालती हूँ उसके लिए तो'''।

पुरुष एक : हाँऽऽ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मनाते कि एक इतना बड़ा आदमी सिर्फ एक बार कहने भर से।

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मानता ? जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था'''।

स्त्री : और *क्या-क्या बात रह गई है कहने को बाकी ? वह भी कह डालो* जल्दी से।

1.8.2.1.2. स्थिर संलाप मूलक प्रोक्ति :

इस प्रकार की प्रोक्ति की विशेषता यह है कि वक्ता अपनी प्रोक्ति तो निवेदित करता है, किन्तु श्रोता उसकी प्रतिक्रिया में वक्ता की भूमिका में उपस्थित नहीं हो पाता है।

स्थिर संलापमूलक प्रोक्ति के पुनः दो उपभेद होते हैं, जिन्हें क्रमशः *1.8.2.1.2.1. द्वयाभिमुखी स्थिर संलापमूलक* प्रोक्ति और 1.8.2.1.2.2. एकाभिमुखी स्थिर संलापमूलक प्रोक्ति कहते हैं।

1.8.2.1.2.1 द्वयाभिमुखी स्थिर संलापमूलक प्रोक्ति :

इस प्रकार की प्रोक्ति में वक्ता तो सक्रिय रहता है, किन्तु श्रोता वक्ता की भूमिका में नहीं आता है। हाँ, वह अपनी अनुक्रिया मुद्राओं, संकेतों तथा भाषेतर ध्वनियों से अवश्य प्रकट करता है। पर भाषिक दृष्टि से वह मुख्यतः निष्क्रिय

रहता है । प्रोक्ति का यह प्रकार मुख्यतः मंच से नेता द्वारा सम्बोधित की जाने वाली भाषणात्मक प्रोक्ति में प्राप्त होता है । राजनैतिक, धार्मिक नेताओं की भाषणात्मक प्रोक्ति को प्रायः श्रोता मौन सुनते हैं या सिर हिलाते हैं या करतल-ध्वनि करते हैं, लेकिन सामान्यतः भाषिक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं । इसकी दूसरी स्थिति मंच पर क्रियाशील अभिनेयात्मक प्रोक्ति में देखने को मिलती है । यहां भी दर्शक-श्रोता मुद्राओं के द्वारा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, लेकिन वक्ता की सक्रिय-भूमिका नहीं निभाते हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है—

अनाउंसर : (झुनझुना हिलाकर) हम सवालात पैदा करते हैं ।
(झुनझुना हिलाकर) जो समय और ऋतुओं का दर्पण दमकते हुए हीरों की तरह काट देते हैं । सवालात जो वीरान सड़कों पर छिपे हुए जालों की तरह बिछे रहते हैं । (झुनझुना) हम मृत्यु को निरुत्तर कर देते हैं । (जोर से झुनझुना बजाती है ।) मृत्यु हमारे सिरहाने लोरिया गाती है । हम अपनी जान को खतरे में डाल सकते हैं । पेंशनें नहीं ।

तीसरी स्थिति की प्रोक्ति कक्षा में या संगोष्ठियों-सम्मेलनों में दी जाने वाली व्याख्यात्मक प्रोक्ति की होती है, जिसमें श्रोता अधिकांशतः मौन रहते हैं, पर आवश्यकता पड़ने पर एक-दो प्रश्नात्मक प्रोक्ति अनुक्रियावश प्रस्तुत करते हैं ।

1.8.2.1.2.2. एकाभिमुखी स्थिर संलापमूलक प्रोक्ति :

इसमें वक्ता के सामने श्रोता की प्रत्यक्ष उपस्थिति आवश्यक नहीं होती । आकाशवाणी और दूरदर्शन के समाचार-प्रसारण इसके उदाहरण हैं । निम्नलिखित प्रोक्ति द्रष्टव्य है—

'पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री और अकाली नेता श्री प्रकाश सिंह बादल ने आज लुधियाना की सभा में बोलते हुए केन्द्र के साथ तब तक किसी भी प्रकार की सम्भावित बातचीत से इन्कार किया है जब तक केन्द्र पहले उनकी पांच-सूत्रीय योजना को स्वीकार नहीं कर लेता ।'

1.8.2.2. एकालापमूलक प्रोक्ति

एकालापमूलक प्रोक्ति में एक ही पात्र वक्ता और श्रोता की भूमिका में होता है । प्रकार की दृष्टि से एकालाप को भी संलाप के अंतर्गत ही माना जाता है, क्योंकि इसमें वक्ता और श्रोता दोनों ही उपस्थित होते हैं । ऐसी एकालापमूलक प्रोक्ति भावावेश में बढ़ती है । इसके तीन उपभेद होते हैं—

1.8.2.2.1. गत्यात्मक एकालापमूलक प्रोक्ति
1.8.2.2.2. स्थिर एकालापमूलक प्रोक्ति, और
1.8.2.2.3. स्वगत प्रोक्ति

1.8.2.2.1. गत्यात्मक एकालापमूलक प्रोक्ति :

इसमें वक्ता स्वयं ही प्रश्न करता, निषेध करता और श्रोता के रूप में स्वयं ही उत्तर देता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित प्रोक्ति को लिया जा सकता है—

मल्लिका : नहीं तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। ''मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं शासन-भार सम्भालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएं दी—यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभकामनाएं ग्रहण नहीं की। (ग्रन्थ को हाथों में लिए जैसे अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।)

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। (ग्रन्थ को घुटने पर रख लेती है।)

और आज तुम मेरे जीवन को इस तरह निरर्थक कर दोगे? (ग्रन्थ को आसन पर रखकर उद्विग्न दृष्टि से उसकी ओर देखती रहती है।)

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती। क्या जीवन को तुम मेरी दृष्टि से देख सकते हो? जानते हो, मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं? मैंने क्या-क्या देखा है? क्या-से-क्या हुई हूँ? (उठकर किवाड़ खोल देती है और पालने की ओर सकेत करती है।)

इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं इसकी देखभाल करती हूँ ''। वह मेरे अभाव की संतान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जानें कितनी-कितनी आकृतियां हैं।

(आषाढ़ का एक दिन)

1.8.2.2.2. स्थिर एकालापमूलक प्रोक्ति :

गत्यात्मक के विपरीत स्थिर एकालापमूलक प्रोक्ति में वक्ता स्थिर रूप में विचार करता है। वह प्रश्न उठाता हुआ भी शान्ति और स्थिर प्रोक्ति उपस्थित करता है। निम्नांकित प्रोक्ति इसका उदाहरण है—

'इस साम्राज्य का बोझ किसके लिए? हृदय में अशान्ति, राज्य में अशान्ति, परिवार में अशान्ति। केवल मेरे अस्तित्व से? मालूम होता है कि सबकी, विश्व

भर की शांति-रजनी में मैं ही धूमकेतु हूँ। यदि मैं न होता तो यह संसार अपनी स्वाभाविक गति से, आनन्द से चला करता। परन्तु मेरा तो निज का कोई स्वार्थ नही, हृदय के एक-एक कोने को छान डाला। कही भी कामना की वन्या नही। बलवती आशा की आंधी चल रही है।

(स्कन्दगुप्त)

1.8 2.2.3. स्वगत एकालापमूलक प्रोक्ति :

ऐसी एकालापमूलक प्रोक्ति स्वगत कहलाती है जहाँ नाटक में पात्र अपने-आप ही बात करते हैं। यहाँ यद्यपि दर्शक उसके श्रोता के रूप मे उपस्थित होते हैं, पर वे कोई अनुक्रिया व्यक्त नही करते। निम्नलिखित प्रोक्ति इसका उदाहरण है—

मि० सेठ (घूमते हुए) : मेरा वक्तव्य कितना जोरदार था। छात्रों में हलचल मच गयी होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जाएगी।

(टेलीफोन की घण्टी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।)

(अधिकार का रक्षक)

1.8.3. प्रयुक्ति-निर्धारक(Determiners of Registers) पर आधारित प्रकार :

हैलीडे के अनुसार प्रयुक्ति (Registers) को अर्थ की उस विशिष्ट समाकृति के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जो किसी विशिष्ट स्थिति-प्ररूप से सम्बद्ध हो। 'प्रयुक्ति अर्थपरक विविधता है तथा अन्तर्हित अर्थ की अवधारणा है। इस रूप मे प्रयुक्ति अन्तर्हित अर्थ की ऐसी शृंखला है, जो स्थिति के संकेतार्थी अभिलक्षणों के द्वारा क्रियान्वित होती है। वे भाषिक अभिलक्षण जो स्थितिगत वैशिष्ट्य की समाकृति के साथ विशेष रूप में सम्बद्ध होते हैं और जिनमे क्षेत्र, प्रकार और दिशा-विशेष की विशिष्ट मूल्यवत्ता निहित होती है वे ही वास्तव में किसी प्रयुक्ति को संघटित करते हैं।'[1]

प्रयुक्ति की धारणा यह स्पष्ट करती है कि हम जो भाषा लिखते और बोलते हैं वह स्थितियों के आधार पर बदलती रहती है। प्रयुक्ति का सिद्धान्त वास्तव में इस वैविध्य को शासित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों को तलाशने का प्रयास करता है, जिनसे यह जाना जा सके कि कौन-कौन से स्थितिगत तत्त्व किन-किन भाषिक अभिलक्षणों को निर्धारित करते हैं। एक से दूसरी प्रयुक्ति का अन्तर वास्तव मे 'क्या कहा जाता है' से 'कैसे कहा जाता है' का भी अन्तर है। इस प्रकार प्रयुक्ति ऐसी अर्थगत समाकृति का मूलक है जो विशेष रूप में

1. एलेक्स डी. जोइया और एड्रियन स्लेनतान, टर्म्ज़ इन सिस्टिमिक लिंग्विस्टिक्स : ए गाइड टु हैलीडे (लन्डन : बेट्सफोर्ड एकेडेमिक ऐण्ड एड्केशनल लि०, 1960), पृ० 119

स्थिति के संदर्भों के विशेष वर्ग से सम्बद्ध होता है और पाठ के स्तर को परिभाषित करता है।

हैलीडे ने कहा है कि क्षेत्र, दिशा और प्रकार किसी भी पाठ के वातावरणिक निर्धारक हैं। उसके अनुसार प्रयुक्ति का क्षेत्र, प्रयुक्ति का प्रकार और प्रयुक्ति की दिशा अपने-आप मे भाषा के वैविध्य के प्रकार नहीं हैं, वे तो स्थिति के संदर्भ के ऐसे अभिलक्षण हैं, ऐसे पृष्ठ-पट हैं, जो व्यवहृत भाषा के प्रकार को निर्धारित करते हैं।[2]

दूसरे शब्दों में ये प्रयुक्ति को निर्धारित करते हैं, चयनित अर्थ को निर्धारित करते हैं और शब्द-भंडार तथा व्याकरण मे इसकी अभिव्यक्ति को निर्धारित करते हैं। यहाँ द्रष्टव्य है कि ये सामूहिक तौर पर, न कि खंडशः प्रयुक्ति को निर्धारित करते हैं। हैलीडे के अनुसार क्षेत्र, प्रकार और दिशा—तीनों ही समष्टिगत रूप में किसी भी पाठ की स्थिति के संदर्भ को परिभाषित करते हैं।

वस्तुतः प्रोक्ति के संदर्भ मे ये तीन अतिरिक्त, पर परस्पर सम्बद्ध ऐसे आयाम हैं, जो भाषिक प्रयोग के वैशिष्ट्य को परिभाषित करने के मूल्यवान साधन मुहैया करते हैं। ऊपर विवेचित प्रयुक्ति के निर्धारकों के आधार पर प्रोक्ति के निम्नलिखित तीन प्रकार किये जाते हैं—

1.8.3.1. क्षेत्राधारित प्रोक्ति
1.8.3.2. विधि आधारित प्रोक्ति, और
1.8.3.3. दिशाधारित प्रोक्ति

1.8.3.1. क्षेत्राधारित (Field based) प्रोक्ति :

यह वह प्रोक्ति-प्रकार है जिसमे विषय-वस्तु और उसके अभिव्यक्त अभिलक्षण के मूल मे प्रोक्ति का क्षेत्र विषय-रूप मे क्रियाशील होता है। क्षेत्राधारित प्रोक्ति तकनीकी और गैर-तकनीकी दोनों प्रकार की होती है। लम्बे पाठों मे प्रोक्ति का अन्तरण 'क्षेत्र' पर ही आधारित होता है। 'क्षेत्र' के बदलने से प्रोक्ति-प्रकार मे अन्तर आता है। उदाहरण के लिए एक परिवार के भीतर समय के एक ही निश्चित बिन्दु पर एक ही वक्ता के द्वारा विभिन्न 'क्षेत्रों' मे व्यक्त की जाने वाली प्रोक्ति तदनुरूप बदलती जाती है। ऐसा वक्ता यदि एक ओर अपने यहाँ आये हुए अतिथि के स्वागत की प्रोक्ति व्यक्त करता है, तो दूसरी ओर अपने मकान की चल रही मरम्मत के विषय में मजदूर को भी कहता है। तीसरी ओर अपने पुत्र से बैंक से रकम निकालने के सम्बन्ध में चैक ले जाने की प्रोक्ति भी उपस्थित करता है और

2. वही, पृ० 117

चौथी और शोर कर रही अपनी बेटी के प्रति प्रताड़ना की प्रोक्ति भी प्रस्तुत करता है। यहाँ वह अखबार पढ़ते पाकिस्तानी सीमा पर सैनिक-टुकड़ियों के जमाव को लेकर भी अपनी प्रतिक्रियात्मक प्रोक्ति प्रस्तुत कर सकता है और अपने नौकर के प्रति धुले हुए कपड़ों को 'प्रेस' करने की प्रोक्ति भी उपस्थित कर सकता है। प्रोक्ति के इस विशेष प्रकार पर विचार करते हुए डॉ० भाटिया ने स्पष्ट किया है— 'क्षेत्र के अनुसार भाषा का स्वरूप बदलता है। वह स्थिति-परिस्थिति जिसमें किसी भाषा का प्रयोग किया गया है, विशेष प्रभाव डालती है। अगर कहीं चर्चा-परिचर्चा में भाग ले रहे हैं तो भिन्न, इसी तरह किसी शैक्षणिक संगोष्ठी में भाग लेते समय भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग करना पड़ेगा।'[1] इस प्रकार दैनिक संदर्भ हो या किसी भी साहित्यिक कृति का संदर्भ, 'क्षेत्र' के परिवर्तन के साथ प्रोक्ति सदैव परिवर्तित होती रहती है। वस्तुतः एक पात्र द्वारा भिन्न-भिन्न पात्रों के साथ एक ही समय में अनेक प्रकार की उक्ति प्रस्तुत करने से जो अनेकता-विविधता सामने आती है, उसे 'क्षेत्र'-आधारित प्रोक्ति-प्रकार के रूप में ही रेखांकित किया जाता है।

1.8.3.2. विधि आधारित (Mode based) प्रोक्ति :

इसके मुख्यतः दो प्रकार हैं—

1.8.3.2.1. वाचिक प्रोक्ति, और
1.7.3.2.2. लिखित प्रोक्ति

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि प्रत्येक लिखित प्रोक्ति पढ़ी जाती है, किन्तु प्रत्येक वाचिक प्रोक्ति लिखित भाषा में उपलब्ध हो, यह आवश्यक नहीं है। लिखित प्रोक्ति के विभिन्न रूपों में समाचारपत्र, विज्ञापन, कहानी और कविता की प्रोक्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वाचिक रूप में कक्षा का व्याख्यान, नेता का भाषण, रेडियो की परिचर्चा का स्वरूप भिन्न हो जाता है। समाचार-पत्र की भाषा में ही 'खबरों की प्रोक्ति', 'सम्पादकीय' प्रोक्ति और 'फीचर की प्रोक्ति' में परस्पर अन्तर होता है। प्रत्यक्ष वार्तालाप की प्रोक्ति और टेलीफोन पर बात करने की प्रोक्ति में भी स्पष्ट भिन्नता होती है। इस प्रकार के प्रोक्ति-भेद को विधि के आधार पर ही स्वरूपित-निर्दिष्ट किया जाता है। इनकी भिन्नता अनेक उपप्रकारों को सिरज देती है।

1.8.3.3. दिशाधारित (Tenor Based) प्रोक्ति :

'दिशा' औपचारिक और अनौपचारिक होती है। जब प्रोक्ति-प्रकार वक्ता

1. कैलाशचन्द्र भाटिया, 'प्रोक्ति-संरचना', परिषद-पत्रिका, सं० श्री रंजन सूरिदेव (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, जुलाई 1980). पृ० 86

और श्रोता के बीच के सम्बन्ध के आधार पर स्वरूपित होता है तब प्रोक्ति का दिशाधारित प्रकार सामने आता है। यहाँ प्रोक्तियाँ एक सातत्य में कार्य करती हैं। यहाँ प्रोक्ति-प्रकार या तो पूर्ण औपचारिक होगा या पूर्ण अंतरंग।

इस आधार पर उपन्यास आदि में उत्तम पुरुष की दृष्टि से और अन्य पुरुष की दृष्टि से प्रस्तुत होने वाली प्रोक्तियों को अन्तरंग प्रोक्ति-प्रकार और औपचारिक प्रोक्ति-प्रकार के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जब कभी सामान्य जीवन में या नाटक में वार्तालाप के दौरान प्रोक्ति-प्रकार की इस दिशा में अंतरण उपस्थित होता है तब प्रोक्ति का ऐसा अंतरण वस्तुतः सम्बन्धों के अंतरण को अथवा भावमुद्रा के अन्तरण को द्योतित करता है। इस तरह प्रोक्ति के अनेक उपप्रकार दिशाधारित होते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट समझना चाहिए कि प्रयुक्ति के क्षेत्र, विधि और दिशा के आधार पर किया जाने वाला प्रोक्ति का वर्गीकरण न केवल अन्तस्सम्बद्ध है, बल्कि अन्तस्सक्रिय भी है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनकी प्रोक्तियाँ कुछ 'विधि' से अपेक्षया अधिक जुड़ती हैं और कभी विधि में होने वाला अन्तरण 'दिशा' के अन्तरण से भी जुड़ जाता है।

1.8.4. प्रकार्य-आधारित प्रकार :

प्रोक्ति के प्रकार को भाषा के प्रकार्यों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है। प्रोक्ति के ये प्रकार्य-आधारित प्रकार मेलिनोवस्की, कार्लबुहलर, मुकारोवस्की, रोमन याकोब्सन, मार्तिने तथा एम० ए० के हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट भाषिक प्रकार्यों पर आधारित-स्वरूपित हैं।

1.8.4.1. मेलिनोव्स्की के भाषिक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

भाषा के प्रकार्य पर सबसे पहले मेलिनोव्स्की ने विचार करते हुए भाषा के तथ्यात्मक (Pragmatic) और जादुई (Magical) नामक दो प्रकार्य निर्दिष्ट किये थे।[1] इस दृष्टि से प्रोक्ति के 1. तथ्यकीय और 2. चमत्कारी जैसे दो प्रकार सामने आते हैं।

1.8.4.2. कार्ल बुहलर के भाषिक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

मेलिनोव्स्की के बाद कार्ल बुहलर ने 1. कथ्यात्मक 2. अभिव्यंजनात्मक

---

1. एम० ए० के० हैलीडे, 'लैंग्वेज स्ट्रक्चर एँड लैंग्वेज फंक्शन', न्यू होराइजंज इन लिंग्विस्टिक्स, सम्पा० जॉन लायंस (बाल्टीमोर: पेंगुइन बुक्स, 1970, पुनर्मुद्रण, 1972), पृ० 141

और 3. इच्छात्मक, जैसे तीन भाषिक प्रकार्य निर्दिष्ट किए।[1] इस दृष्टि से प्रोक्ति के 1. कथ्यात्मक 2. अभिव्यंजनात्मक और 3. इच्छात्मक जैसे तीन प्रोक्ति-प्रकार स्पष्ट होते हैं।

1.8.4.3. मुकारोव्स्की के भाषिक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति प्रकार :

मुकारोव्स्की ने कार्ल बुहलर द्वारा निर्दिष्ट तीन प्रकार्यों के अतिरिक्त चौथे प्रकार्य के बतौर भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य प्रस्तावित किया।[2] इस तरह मुकारोव्स्की के आधार पर प्रोक्ति के निम्नलिखित प्रकार स्वरूपित होते हैं।

(1) कथ्यात्मक प्रोक्ति-प्रकार, (2) अभिव्यंजनात्मक प्रोक्ति-प्रकार, (3) इच्छात्मक प्रोक्ति-प्रकार और (4) सौन्दर्यात्मक प्रोक्ति-प्रकार।

1.8.4.4. रोमन याकोब्सन द्वारा निर्दिष्ट भाषिक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

भाषा के प्रकार्यों पर विचार करते हुए रोमन याकोब्सन ने (1) अभिधेयात्मक प्रकार्य, (2) आभिव्यक्तिक प्रकार्य, (3) इच्छात्मक प्रकार्य, (4) सम्पर्क-द्योतक प्रकार्य, (5) काव्यात्मक प्रकार्य और (6) अधिभाषात्मक प्रकार्य जैसे छह प्रकार्य निर्दिष्ट किये,[3] जिनके आधार पर प्रोक्ति के (1) अभिधेयात्मक, (2) आभिव्यक्तिक, (3) इच्छात्मक, (4) सम्पर्कद्योतक, (5) काव्यात्मक और (6) आधिभाषिक जैसे 6 प्रकार उपस्थित होते हैं।

1.8.4.5. मार्तिने द्वारा निर्दिष्ट भाषित प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

मार्तिने ने भाषा के प्रकार्य पर विचार करते हुए भाषा का एक प्रभावात्मक

---

1. एम० ए० के० हैलीडे, 'लैंग्वेज स्ट्रेक्चर ऐंड लैंग्वेज फंक्शन,' न्यू होराइजंज इन लिंग्विस्टिक्स, सम्पा० जॉन लायंस (बाल्टीमोर : पेंगुइन बुक्स, 1970, पुनर्मुद्रण, 1972), पृ० 141

2. जे० मुकारोव्स्की, 'स्टैंडर्ड लैंग्वेज, ऐंड पोयटिक लैंग्वेज' अ प्राग स्कूल रीडर आन एस्थेटिक्स, लिटरेरी स्ट्रक्चर ऐंड स्टाइल, सम्पा० पी० एल० गार्विन (वाशिंगटन डी० सी० : जार्ज टाउन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 17

3. जी० सी० लिप्शी, 'फंक्शनल लिंग्विस्टिक्स : अ सर्वे अव स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स (लंदन : फेबर ऐंड फेबर, 1970, पेपर बैक संस्करण, 1972), पृ० 92

प्रकार्य भी निर्दिष्ट किया।[1] इसको ध्यान में रखते हुए प्रोक्ति के प्रभावात्मक प्रकार को भी स्वरूपित किया जा सकता है।

1.8.4.6. एम० ए० के हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट भाषिक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

एम० ए० के हैलीडे ने भाषा के प्रकार्य पर विचार करते हुए उसके तीन प्रकार्यों का उल्लेख किया है—

1.8.4.6.1. विचारात्मक प्रकार्य
1.8.4.6.2. अन्तर-वैयक्तिक प्रकार्य, और
1.8.4.6.3. पाठात्मक प्रकार्य

पुनः हैलीडे महोदय ने इन प्रकार्यों के दो-दो उपभेद किए हैं—

1.8.4.6.1.4. विचारात्मक प्रकार्य
1.8.4.6.1.4.1. आनुभूतिक प्रकार्य
1.8.4.6 1.4.2. तार्किक प्रकार्य

1.8.4.6.2. अन्तर-वैयक्तिक प्रकार्य :

1.8.4.6 2.1. वाचिक प्रकार्य
1.8.4 6.2.2. वक्ता और श्रोता-विषयक मनोवृत्ति

1.8.4.6.3. पाठात्मक प्रकार्य :

1.8.4.6.3.1. सूचनात्मक प्रकार्य और
1.8.4 6.3.2. कथ्यात्मक प्रकार्य

हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट इन आधारों पर प्रोक्ति के निम्नलिखित छह प्रकार स्पष्ट होते हैं—

1.8.4.6.1.1. आनुभूतिक प्रोक्ति
1.8.4.6.1.2. तार्किक प्रोक्ति
1.8.4.6.1.3. वाचिक प्रोक्ति
1.8.4.6.1.4. मनोवृत्तिमूलक प्रोक्ति
1.8.4.6.1.5. सूचनात्मक प्रोक्ति और
1.8.4 6.1.6. कथ्यात्मक प्रोक्ति

---

1. (क) पूर्वक्त, पृ० 103-109
   (ख) द्रष्टव्य : ए मार्तिने, 'अ फंक्शनल व्यिउ अव लैंग्वेज (आक्सफोर्ड, 1962),
2. एम० ए० के० हैलीडे 'लिंग्विस्टिक फंक्शन ऐंण्ड लिटरेरी स्टाइल : ऐन इन्क्वायरी इन टु द लैंग्वेज अव विलियम गोल्डिंग्ज द इनहेरिटर्ज', लिटरेरी स्टाइल : अ सिम्पोजियम, सम्पा० सेयूर चैटमेन (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), पृ० 332-334

1.8-4.6.1.1. आनुभूतिक प्रोक्ति-प्रकार

हैलीडे के अनुसार वस्तु की अभिव्यंजिका भाषा का स्वरूप विचारात्मक प्रकार्य के रूप में उभरता है। अतः इसके अंतर्गत आने वाले आनुभूतिक प्रकार्य के आधार पर जो आनुभूतिक प्रोक्ति-प्रकार स्वरूपित होता है वह यथार्थ तत्त्वों के प्रति वक्ता और लेखक की अनुभूति तथा उसकी निजी चेतना के आन्तरिक जगत के अनुभव से सम्बद्ध होता है। इसमे वक्ता/रचयिता की प्रतिक्रियाएँ, संज्ञानात्मकता, प्रत्यक्षीकरण जैसे तत्त्व जुड़े होते हैं। इस दृष्टि से आनुभूतिक प्रोक्ति के निम्नलिखित उपप्रकार स्पष्ट होते हैं—

(1) प्रत्यक्षमूलक प्रोक्ति
(2) संज्ञानमूलक प्रोक्ति
(3) अनुक्रियामूलक प्रोक्ति
(4) प्रतिक्रियामूलक प्रोक्ति
(5) प्रेममूलक प्रोक्ति
(6) घृणामूलक प्रोक्ति
(7) उत्साहमूलक या ओजमूलक प्रोक्ति
(8) क्रोधमूलक प्रोक्ति
(9) करुणामूलक प्रोक्ति
(10) श्रद्धामूलक प्रोक्ति
(11) आश्चर्यमूलक प्रोक्ति
(12) निर्देशमूलक प्रोक्ति
(13) ह्रासमूलक प्रोक्ति
(14) रौद्रमूलक प्रोक्ति

1.8.4.6.1.2. तार्किक प्रोक्ति-प्रकार :

तार्किक प्रोक्ति-प्रकार कारण-कार्य सम्बन्ध के प्रतिवेदन-मात्र के समन्वयन के और अभिप्रायीकरण के प्रोक्ति-प्रकार के रूप में उभरता है।

1.8.4.6.1.2.1. वाचिक प्रोक्ति-प्रकार :

अन्तर वैयक्तिक प्रोक्ति-पकार में वाचिक प्रोक्ति मूलतः वृत्तिकता (Modality) पर आधारित होती है। इस प्रोक्ति में विधेय-निषेध, आज्ञा-विधि, विस्मय-प्रश्न आदि के रूप में प्रोक्ति के प्रकार उभरते हैं—

(1) विधेयात्मक प्रोक्ति
(2) निषेधात्मक प्रोक्ति
(3) आज्ञात्मक प्रोक्ति

(4) विधिपरक प्रोक्ति
(5) प्रेरणार्थक प्रोक्ति
(6) प्रश्नात्मक प्रोक्ति
(7) विस्मयात्मक प्रोक्ति

1.8.4.6.2.2. मनोवृत्तिमूलक प्रोक्ति-प्रकार :

मनोवृत्तिमूलक प्रवृत्ति के अन्तर्गत वक्ता के द्वारा श्रोता के प्रति संचरित मनोवृत्ति के अनुरूप निम्नलिखित प्रोक्ति-प्रकार सामने आते हैं—

(1) आदरार्थक प्रोक्ति
(2) उपेक्षात्मक प्रोक्ति
(3) औपचारिक प्रोक्ति
(4) अन्तरंग-आत्मीय प्रोक्ति

1.8.4.6 3.1. सूचनात्मक प्रोक्ति-प्रकार :

पाठात्मक प्रकार्य के आधार पर सूचनात्मक और कथ्यात्मक प्रोक्ति-प्रकार सामने आते हैं। सूचनात्मक प्रोक्ति-प्रकार किसी भी प्रोक्ति में 'प्राचीन' और 'नवीन', 'अक्षक' और 'वर्तक' जैसे प्रोक्ति-अनुभाग के रूप में सक्रिय रहते हैं।

1.8.4.6.3.2. कथ्यात्मक प्रोक्ति प्रकार :

कथ्यात्मक प्रोक्ति-प्रकार पाठ में निरूपित संदेश की विविधता और विभिन्नता की प्रकृति पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए पाठ में यथानिहित 'क्रीड़ा' की प्रोक्ति, 'राज्याभिषेक' की प्रोक्ति, 'आखेट' की प्रोक्ति, राज्य निष्कासन' की प्रोक्ति जैसे कथ्य-संदेश स्वतः प्रोक्ति-प्रकार को स्वरूपित करते हैं। यहाँ प्रकार का सीमांकन नहीं है, क्योंकि 'वाचिक' अथवा 'लिखित' संदर्भ में जितने प्रकार के संदेश होंगे उतने ही प्रोक्ति-प्रकार भी बनेंगे।

'1.9. कथात्मक प्रोक्ति : प्रकार-विवेचन :

प्रोक्ति पर विचार करने के क्रम में विवेचकों ने सामान्य प्रोक्ति-प्रकार से अलग हट कर कथात्मक प्रोक्ति-प्रकार का भी विवेचन किया है। ऐसे विवेचकों में सैमूर चैटमैन, डोलजेल, जेने, प्रीमा होरिट कोन आदि प्रमुख हैं। अतः कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार को इन विवेचकों के विवेचन के आधार पर निर्दिष्ट किया जा सकता है—1.9.1. सैमूर चैटमैन द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार, 1.9.2. डोलजेल द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार, 1.9.3. प्रीमा द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार, 1.9.4. जेने द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार और 1.9.5. डोरिट कोन द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार।

1.9.1 सेमूर चैटमैन द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार :

सेमूर चैटमैन ने कथात्मक प्रोक्ति पर विचार करते हुए कथात्मक प्रतिज्ञप्ति (Narrative Discourse) और कथ्य की संरचना के आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार का आधार उपस्थित किया है।[1] इस आधार पर निम्नलिखित प्रकार स्पष्ट होते हैं—

1.9.1.1. कथात्मक प्रतिज्ञप्ति (Narrative Discourse) पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

चैटमैन मूलभूत कथात्मक क्रिया के रूप मे 'करना' (D O) और 'होना' (Happen) को रेखांकित करता है, जिनके आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के दो प्रकार स्पष्ट होते हैं—

1.9.1.1.1. प्रतिक्रियात्मक प्रोक्ति-प्रकार और

1.9.1.1.2. अस्तित्वपरक प्रोक्ति-प्रकार

3. मूल्यमीमांसी कहानियाँ (Axiological Stories)—इसके अन्तर्गत सत्-असत्, भले-बुरे एवं तटस्थ का अभिव्यंजन होता है।

4. ज्ञान-मीमांसी कहानियाँ (Epistemic Stories) इसके अन्तर्गत ज्ञान-अज्ञान और विश्वास का अभिव्यंजन होता है।

1.9 2. डोलजेल द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार :

डोलजेल ने इस प्रकार की कहानियों का वर्गीकरण कथा-व्यवस्था के अन्तर्गत किया है तथा इस व्यवस्था को मुक्त रखते हुए इसके अन्य प्रकारों से जुड़ने की सम्भावना को भी स्वीकार किया है।

डोलजेल के द्वारा निर्दिष्ट कहानियो के प्रकार के आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के चार प्रकार निर्दिष्ट किये जा सकते हैं—

1.9 2.1. शक्याशक्य प्रोक्ति

1.9.2.2. आचारिक प्रोक्ति

1.6.2.3. मूल्यपरक प्रोक्ति, और

1.9.2.4. ज्ञान-मीमांसी प्रोक्ति

1.9.3. ग्रीमा द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार :

ग्रीमा ने कहानी के तत्वों को जिन तीन रूपों मे नियोजित करने का प्रस्ताव

---

1. सेमूर चैटमैन, 'द स्ट्रक्चरल थॅव नैरेटिव ट्रांसमिशन', स्टाइल एण्ड स्ट्रक्चर इन लिटरेचर, सम्पा० रोजर फाउलर (न्यूयार्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975), पृ० 213-214

किया है, उनके आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के निम्नलिखित प्रकार स्पष्ट होते हैं—[1]

1.9.3.1. अनुबन्धनात्मक अनुक्रम की प्रोक्ति (Discourse of Contractual Sequence)

1.9.3.2. निष्पादक अनुक्रम की प्रोक्ति (Discourse of Performative) और

1.9.3.3. विस्थापनमूलक अनुक्रम की प्रोक्ति (Discourse of Disjunctional Sequence)

1.9.3.1. अनुबंधनात्मक अनुक्रम की प्रोक्ति :

यह प्रोक्ति प्रतिश्रुति अथवा दायित्वबोध संघटन अथवा किसी प्रस्ताव की अस्वीकृति में उभरती है।

1.9.3.2. निष्पादक अनुक्रम की प्रोक्ति :

यह प्रोक्ति क्रिया-व्यापारों की वास्तविक निष्पन्नता में प्रस्तुत होती है।

1.9.3.3. विस्थापनमूलक अनुक्रम की प्रोक्ति :

यह प्रोक्ति गतिशीलता और अनेक प्रकार की विस्थापन-मूलकता में उपस्थित होती है।

1.9.4. जेने द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार :

जेने प्रोक्ति या आख्यान/कथा (Recit : the discourse or narrative) कथात्मक वस्तु (Narrative content) और कथात्मकता—कथात्मक उत्पादन के क्रिया-व्यापार (the act of narrative Production) के बीच अंतर स्पष्ट करता है। जेने प्रोक्ति का पाठात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता कहानी में तीन प्रमुख पहलुओं को निर्दिष्ट करता है[2]—1. 9. 4. 1. काल, 1.9.4.2. प्रविधि और 1. 9. 4.3. अभिव्यक्ति।

1. 9. 4. 1. काल :

काल के अन्तर्गत कहानी में तिथिक्रमिक नातेदारी का गुच्छ सामने आता

1. जोनाथन कॅलर, डिफाइनिंग नैरेटिव यूनिट्स, स्टाइल ऐण्ड स्ट्रक्चर इन लिटरेचर, संपा. रोजर फाउलर (न्यूयार्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975), पृ० 131-132,
2. थामस जी, पावेल, 'लिटरेरी नैरेटिव्ज, डिस्कोर्स ऐंड लिटरेचर, सम्पा. टी. ए. वानडिज्क (एम्सटर्डम : जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कम्पनी, 1985), पृ. 96-101

है। विशेष रूप में कथा की प्रोक्ति और कथा की अन्तर्वस्तु के बीच का कालिक सम्बन्ध उभरता है। यह सम्बन्ध मूलतः तीन प्रमुख कोटियों के आधार पर संघटित होता है। इनमें पहली कोटि 'क्रम' (Order) की है, जिसके अन्तर्गत कथात्मक अन्तर्वस्तु की तिथि-वारिकता और घटना की पाठात्मक व्यवस्था के बीच की अन्योन्य क्रिया आती है। दूसरी कोटि 'स्थितिकाल' (Duration) की है, जिसके अन्तर्गत घटना की दीर्घता को उसकी पाठात्मक प्रस्तुति की दीर्घता के आमने-सामने रखा जाता है। तीसरी कोटि 'बारम्बारिता' (Ferquency) की है, जिसके अन्तर्गत कहानी में किसी घटना की उपस्थिति-संख्या को पाठ में इसके वर्णित होने की समय-संख्या से जोड़ा जाता है।

1.9.4.1.1. क्रम (Order).

क्रम का आरेखन अमूर्त कहानी और पाठ के बीच कालात्मक संयोजन के अभाव अथवा कालदोष (Anechronies) का है। यह कालदोष पूर्व प्रयोग (Prolepses) या पश्चप्रयोग (Retrospections) के रूप में सामने आता है।

1.9.4.1.2. स्थितिकाल (Duration) :

यह कालदोष (An·chronics) को उत्पन्न करता है, जिसके दो रूप होते हैं—गतिवर्धन (Acceleratıon) और गतिमन्दन (Deceleration) अत्यधिक गतिवर्धन अध्याहार (Elip i.) है, जबकि आत्यन्तिक मंदता वर्णनात्मक विरामों (Pauses) के बीच उभरती है।

1.9.4.1.3. बारम्बारिता (Frequencies) :

इसका प्रभाव एकात्मक कहानी (Singularative Stories), आद्यात्मिक एकात्मक कहानी (Anaphoric S ngularative Stories), एक बार घटित अनेकशः आवर्तितकहानी (Repetitive S.ori.s) तथा अनेकश. घटित एक बार पुनरुक्त कहानी (Iterative Stories) के बीच अन्तर स्पष्ट करता है।

उक्त तीनों के आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के (1) क्रमिक प्रोक्ति (2) स्थितिकालिक प्रोक्ति और (3) बारम्बारी प्रोक्ति जैसे तीन प्रकार स्पष्ट होते हैं। इनमें बारम्बारी के (1) एकात्मक प्रोक्ति (2) आद्यात्मक एकात्मक प्रोक्ति, (3) एकशः घटित अनेकशः आवर्तित प्रोक्ति और अनेकशः घटित, एकशः आवर्तित प्रोक्ति जैसे पुनः चार भेद होते हैं।

1.9.4.2. कथात्मक प्रविधि (Modes) :

प्रविधि इस तकनीक को निर्दिष्ट करती है जिससे यह निश्चित किया जाता है कि कहानी का कितना अंश पाठ में लिया जायगा। प्रविधि मूलतः दो हैं—(1) अन्तर (Distance) मूलक प्रविधि (2) परिप्रेक्ष्य (Perspective) मूलक प्रविधि।

1.9.4.2.1. अन्तरमूलक प्रविधि :

इसके अन्तर्गत जैने ने 'घटनाओं की कहानी' (Stories of events) और 'भाषिक कहानी' (Stories of Speech) के बीच अन्तर स्पष्ट किया है। 'भाषिक कहानी' में अन्तर (Distance) के तीन सोपानों के आधार पर तीन प्रकार की कथात्मक प्रोक्तियाँ सामने आती हैं—

(1) प्रतिवेदित प्रोक्ति (Reported Speech)
(2) विवरणित सार प्रोक्ति (Narrativized Speech)
(3) क्रमान्तरित अथवा मुक्त प्रोक्ति (Transposed or free Indirect Sp.ech)

1.9.4 2.2. परिप्रेक्ष्यमूलक प्रविधि :

इस प्रविधि के अन्तर्गत जैने के अनुसार 'प्रविधि की समस्या' और 'अभिव्यक्ति की समस्या' में अन्तर है। प्रविधि की समस्या का महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि 'कौन देखता है', किन्तु 'अभिव्यक्ति की समस्या' का महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि 'कौन बोलता है।' परिप्रेक्ष्य मूलतः संकेन्द्रण अथवा दृष्टिकोण (Focalization or Point of veiw) के प्रश्न से जुड़ा है। इस दृष्टि से जैने ने कहानियों के चार प्रकार निर्दिष्ट किये हैं—(1) केन्द्रणहीन कहानियाँ (Non-Focalized)—ऐसी कहानियाँ सर्वथा कथावाचक के अनुरूप होती हैं।

(2) आन्तरिक रूप में सकेन्द्रित कहानियाँ (Intenally Focalized) इसमें प्रदत्त चरित्र का दृष्टिकोण प्रतिबधित होता है।

(3) बाह्यरूप मे संकेद्रित कहानियाँ (Externally Focalized)—यहाँ कथावाचक चरित्र की अपेक्षा कम जानता है।

(4) बहुरूपात्मक कहानियाँ (Polymodalities)—ऐसी व्यवस्था जिसमें कहानी के बीच वार-वार यह संकेद्रण परिवर्तित होता है बहुरूपात्मकता (Polymodalities) कहलाती है।

परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत उक्त प्रभेदों को देखते हुए कथात्मक प्रोक्ति के (1) अ-संकेन्द्रित प्रोक्ति, (2) आभ्यन्तर-रूप संकेंद्रित प्रोक्ति, (3) बाह्य-रूप संकेन्द्रित प्रोक्ति और (4) बहुरूपात्मक प्रोक्ति जैसे चार प्रकार स्वरूपित होते हैं।

1. 9. 4. 3. अभिव्यक्ति (Voice) :

'अभिव्यक्ति' आख्यान या कथा के उस वर्णन-व्यापार को निर्दिष्ट करती है, जो सदैव वर्णित घटना के अधीनस्थ (Diegetic) स्तर पर स्थित होता है। जैने इस स्तर के कई उपप्रकार निर्दिष्ट करता है, जिनके आधार पर कथा-... प्रोक्ति के निम्नांकित भेद स्पष्ट होते हैं—

1. 9. 4. 3. 1. बहिर्निवेशी स्तर (Extra-Diegetic Level) की प्रोक्ति :

यह घटनाओं के बाहर स्थित स्तर की प्रोक्ति है।

1.9.4.3.2. अन्तर्निवेशी स्तर (Intra-Diegetic Level) की प्रोक्ति :

यह मुख्य कहानी से संबंध रखती है।

1.9.4.3.3. अधिनिवेशी स्तर (Meta-Diegetic Level) की प्रोक्ति :

यह आख्यानों के एक-दूसरे मे अन्तर्ग्रंथित होने पर उपस्थित होती है।

1.9.4.3.4. समनिवेशी स्तर (Homo-Diegetic Level) की प्रोक्ति :

यह कहानी के पात्रों में से किसी एक के कथावाचक बनने से संबंध रखती है।

1.9.4.3. 5. विषमनिवेशी स्तर (Hetro- Diegetic Level) की प्रोक्ति :

इसमे कथावाचक कहानी में नही होकर कहानी से बाहर होता है।

1.9.5. डॉरिट कॉन द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति के प्रकार :

डॉरिट कॉन ने अपनी पुस्तक 'ट्रांसपेरेंट माइन्ड्ज' में समस्यामूलक और समस्याहीन सम्प्रेषणिक स्थिति के बीच तथा कथात्मक घटनाओं के तिथिपरक और तिथिहीन क्रमो के बीच अन्तर स्पष्ट करते हुए 1.9.5.1. उत्तमपुरुष कथात्मकता एवं 1. 9. 5. 2. अन्य पुरूष कथात्मकता का वर्गीकरण किया है। इसके आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के दो प्रकार उभरते हैं।

1.9.5.1. उत्तम पुरुष कथात्मक प्रोक्ति :

कॉन के द्वारा निर्दिष्ट चतुष्पदीय-प्ररूपात्मकता के आधार पर उत्तम पुरुष कथात्मक प्रोक्ति के पुनः निम्नलिखित चार प्रकार स्पष्ट होते हैं—

1.9.5.1.1. कथात्मक-आख्यानक प्रोक्ति :

(समस्याहीन स्थिति-तिथिपरक अनुक्रम)

1.9.5.1.2. आत्मकथात्मक एकालापी प्रोक्ति :

(समस्यामूलक स्थिति-तिथिपरक अनुक्रम)

1.9.5.1.3. आख्यानक प्रोक्ति :

(समस्याहीन स्थिति-तिथिहीन अनुक्रम)

1.9.5.1.4. स्मरण-एकालापीय प्रोक्ति :

(समस्यामूलक स्थिति-तिथिहीन अनुक्रम)

1.9.5.2. अन्यपुरुष कथात्मक प्रोक्ति :

इसके अन्तर्गत डेरिट कॉन ने 1.9.5.2.1. मनोवैज्ञानिक कथात्मक प्रोक्ति और 1.9.5 2.2. ऐतिहासिक कथात्मक प्रोक्ति—जैसे दो प्रकारों को स्वरूपित किया है।

1.9 5.2.1. मनोवैज्ञानिक कथात्मक प्रोक्ति :

यह वहाँ होती है जहाँ पात्रों की चेतना के विषय में सर्जकीय वर्णनात्मकता सामने आती है।

1.9.5.2.2. ऐतिहासिक आख्यानक कथात्मक प्रोक्ति :

जब प्रविधि आन्तर निरूपित न होकर बाह्य-निरूपित होती है तब ऐतिहासिक आख्यानक प्रोक्ति सामने आती है।[1]

1.9.6. ब्लादिमिर प्रॉप द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रकार्यों पर आधारित प्रोक्ति :

रूसी लोक तात्विक चिन्तक प्रॉप ने रूसी परीकथा के संदर्भ में अनेक क्रियात्मक निश्चरों को रेखांकित करते हुए उन्हें प्रकार्य (Functions) की संज्ञा दी थी। इन प्रकार्यों के आधार पर निम्नलिखित कथात्मक प्रोक्ति-प्रकार स्वरूपित होते हैं।[2]—(1) अनुपस्थिति (Abs.nce) की प्रोक्ति, (2) निषेधादेश की (Interdica:.on) की प्रोक्ति, (3) उल्लंघन (Violation) की प्रोक्ति, (4) सर्वेक्षण (Reconnaissance) की प्रोक्ति, (5) प्रदान या वितरण (Delivery) की प्रोक्ति, (6) वंचना या छल-कपट (Fraud) की प्रोक्ति, (7) सह-अपराधिता (Complicit.) की प्रोक्ति, (8) खलनायिका (Villiany) की प्रोक्ति, (9) अभाव (Lack) की प्रोक्ति, (10) ध्यान (Meditation)।

---

1. थामस जी, पावेल 'लिटरेरी नैरेटिव्ज, डिस्कोर्स ऐंड लिटरेचर, संपा. टी. ए. वानडिज्क (एम्सटर्डम : जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कम्पनी, 1985), पृ. 100-101
2. (क) थामस जी. पावेल 'लिटरेरी नैरेटिव्ज, डिस्कोर्स ऐंड लिटरेचर, संपा. टी. ए. वानडिज्क, (एम्सटर्डम जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग क. 1985), पृ. 87
   (ख) ब्लादिमिर प्रॉप, सा मारफोलॅजी [illegible] एंड ऐली, 1970). पृ. 1

की प्रोक्ति, प्रतिकर्म (Counter Action) की प्रोक्ति, (11) प्रस्थान (Departurt) की प्रोक्ति, (12) आवंटन (Assigament) की प्रोक्ति, (13) परीक्षा (Test) की प्रोक्ति, (14) प्रावधान (ProVision) की प्रोक्ति, (15) स्थानांतरण ('ransfer) की प्रोक्ति, (16) संघर्ष (Struggle) की प्रोक्ति, (17) विजय (Victory) की प्रोक्ति, (18) चिह्नांकन (Marking) की प्रोक्ति, (19) अभाव परिसमापन (Lack-Liqu datded) हत्या की प्रोक्ति, (20) वापसी (Return) की प्रोक्ति, (21) पीछा (Chase) करने की प्रोक्ति, (22) उद्धार (Rescue) की प्रोक्ति, (23) अनभिज्ञात पहुंच (Unrecognized-Arrival) की प्रोक्ति, (24) कठिन पाठ (Difficult Task) की प्रोक्ति, (25) निष्पन्न पाठ (Task Accomplished) की प्रोक्ति, (26) अभिज्ञान (Recognetion) की प्रोक्ति, (27) रहस्य-उद्‌घाटन की प्रोक्ति (Exposure), (28) रूपांतरण (Transfiguration) की प्रोक्ति, (29) दंड (Punishment) की प्रोक्ति, (30) विवाह (Wedding) की प्रोक्ति।

1.9.7. त्वेतान तोदोरोव द्वारा निर्दिष्ट कथात्मक प्रोक्ति-प्रकार :

त्वेतान तोदोरोव ने कथात्मक सैद्धांतिकी पर विचार करते हुए कहानी के लिए अर्थगत, वाक्यीय और क्रियात्मक पक्षों की चर्चा की है। कथात्मक वाक्य-रचना की इकाई के रूप में उसने कथात्मक की अवधारणा प्रस्तुत की है, जिसका रचाव उद्देश्य और विधेय से होता है। कथात्मक वाक्य अनुक्रमों में शृंखलित होते हैं। वाक्य की कोटियां व्यक्तिवाचक नामिक विशेषणक और क्रियात्मक से बनती हैं। पात्र-विशेष की सूचनाएँ विशेषणक में निबद्ध होती हैं जो स्थिति, गुणधर्मिता और स्तरीयता से सम्बद्ध रहती हैं, दूसरी ओर ये सूचनाएँ क्रियात्मक में निबद्ध होती हैं, जो क्रियाओं को परिभाषित करती हैं।[1]

तोदोरोव ने यहीं क्रियात्मक वृत्तिकता (Modality) और कथात्मक अनुकृति के संबंध पर विचार किया है। इन दोनों के आधार पर कथात्मक प्रोक्ति के प्रकारों को स्पष्ट किया जा सकता है।

1.9.7.1. क्रियात्मक वृत्तिकता पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

तोदोरोव के अनुसार क्रियात्मक वृत्तिकता पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार निम्नांकित हैं—

1. 9. 7- 1. 1. निश्चयार्थी प्रोक्ति
1.9.7.2. 2. स्वैच्छिक प्रोक्ति

1. थामस जी. पावेल, 'लिटरेरी नैरेटिव्ज, डिस्कोर्स एंड लिटरेचर, संपा. टी. ए. वानडिज्क (एम्सटर्डम : जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कम्पनी. 1985), पृ. 94

1.9.7.2.1.1. इच्छाबोधक प्रोक्ति
1.9 7.2.1.2. अवश्यकरणीय प्रोक्ति
1.9.7.1.3. आनुमानिक प्रोक्ति
1.9.7.3.1. प्रतिबंधित प्रोक्ति
1.9.7.3.2. भविष्यसूचक प्रोक्ति
1. 9. 7. 1. 4. काल्पनिक प्रोक्ति

1. 9. 2. 2. कथात्मक अनुक्रम के संबंध पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

तोदोरोव ने कथात्मक अनुक्रमों पर विचार करते हुए जिन दो प्रकार के सम्बंधों को स्पष्ट किया है उनके आधार पर भी प्रोक्ति-प्रकार स्वरूपित होते हैं। कथात्मक अनुक्रम के संबंध दो प्रकार के होते हैं—

1.9.7.2.1. तार्किक संबंध पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

1.9.7.2.1.1. संशोधन-परिष्करण की प्रोक्ति
1.9.7.2.1 2. अभिलाषा की प्रोक्ति
1.9.7.2.1.3. अभिप्रेरणा की प्रोक्ति
1.9 7.2.1.4. परिणाम की प्रोक्ति
1.9.7.2.1.5. दंड की प्रोक्ति
1.9.7.2.1.6. अनुमान की प्रोक्ति

1.9.7.2.2. कालिक संबंधों पर आधारित प्रोक्ति-प्रकार :

1.9.7.2 2.1. बलात्मक प्रोक्ति
1.9.7.2.2.2. प्रतीपनात्मक प्रोक्ति

1.10. निष्कर्ष :

इस प्रकार प्रोक्ति के अर्थ-संधान, परिभाषांकन, प्रोक्ति और पाठ के अन्तर एवं अन्तस्संबन्ध, प्रोक्ति के प्रकृति-वैशिष्ट्य एवं अनुभाग-रेखांकन तथा प्रोक्ति के प्राचले, वार्तालाप, प्रयुक्ति एवं प्रकार्य-आधारित प्रकार-निरूपण से वह आधार-भूमि स्पष्ट हो जाती है, जिस पर संरचना की अगली चर्चा शुरू की जा सकती है।

प्रोक्ति : संरचना-विवेचन

प्रोक्ति की संरचना के सम्यक् परिज्ञान के लिए उसकी 2. 1. बाह्य संरचना (Surface Structure) और गहन संरचना (Deep Structure) तथा 2. 2. विशद संरचना (Macro-Structure) और सूक्ष्म संरचना (Micro-Structure) का विवेचन अपेक्षित है।

2. 1. प्रोक्ति : बाह्य बनाम गहन संरचना :

इसके अन्तर्गत प्रोक्ति की दो संरचनाओं पर विचार किया जाता है। प्रोक्ति जिस वाक्यिकी से निर्मित होती है, उसके संयोजन पर विचार करने वाली संरचना को बाह्य संरचना कहा जाता है, पर प्रोक्ति जिस अर्थ-पक्ष तथा तथ्यिकी (Pragmatics) को स्पष्ट करती है उस पर विचार करने वाली संरचना को गहन संरचना कहा जाता है।

2. 1. 1. प्रोक्ति : बाह्य संरचना :

बाह्य संरचना पर्यवेक्षणीय होती है। इसके अन्तर्गत वाक्य-रचना तथा शब्द और वाक्यांश का क्रम-विधान आता है। कथा-साहित्य के पाठन/वाचन और निर्माण के लिए बाह्य संरचना के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ प्राप्त होती है। इनमें एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रेखीयता (Linearity) की भी है। रेखीय अनुक्रम आख्यानक काल को उपस्थित करता है। इसके अतिरिक्त बाह्य संरचना तार्किक सम्बन्ध और संसक्ति को दर्शाती है।[1]

प्रोक्ति की बाह्य संरचना का विवेचन चार प्रमुख विचारकों के आधार पर प्राप्त होता है—

2. 1. 1. 1. लुइस टी. मिलिक के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य संरचना।

2. 1. 1. 2. लांगेकर और लेविनशन के आधार बाह्य संरचना।

---

1. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक्स ऐंड नावेल (लंदन : मेथुइन, 1977, पुनर्मुद्रण, 1979), पृ० 6, 7, 8

2. 1. 1. 3. एम० ए० के० हैलीडे के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य संरचना।

2. 1. 1. 4. मिल्ज एरिक ऐंक्विस्ट के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य

2. 1. 1. लुइस टी. मिलिक के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य संरचना :

मिलिक ने बाह्य संरचना के अन्तर्गत वाक्य और वाक्यांशगत संयोजन (क्लांजल लिंकेज) पर विचार किया है।

मिलिक के अनुसार वाक्य और वाक्य या वाक्यांश और वाक्यांश के बीच का संयोजन पूरी प्रोक्ति को संसक्त करता है। यद्यपि किसी 'पाठ' में वाक्य की संसक्ति के कौशल वाक्यांश के संयोजन वाले ही होते हैं, फिर भी वाक्यो के पारस्परिक अन्तर्ग्रंथन की दृष्टि से इन कौशलो पर अलग से ध्यान देने की आवश्यकता है। मिलिक ने वाक्य से वाक्य के बीच सम्बन्ध स्थिर करने वाली आठ प्रकार के आधारभूत संयोजकों का उल्लेख किया है।[1] ये संयोजक निम्न-लिखित हैं—

2. 1. 1. 1. आरंभिक (Initial) :

मिलिक किसी भी अनुच्छेद के पहले वाक्य को और उसके आरम्भिक वाक्य को इस रूप में रेखांकित करता है। यहाँ आरम्भिक शब्द मुख्य ध्यानाकर्षी शब्द के रूप में उपस्थित होता बाद के अनुच्छेदो मे पहले अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य से जुड़ता है।

2. 1. 1. 2. योगात्मक (Additive) .

ये ऐसे निपात हैं जिनका प्रतिज्ञप्ति के साथ किसी प्रकार का मूलभूत संबंध नही होता। ये दो वाक्यों को आपस मे में जोड़ने का और निरन्तरता बनाये रखने का काम करते हैं।

2. 1. 1. 3. विरोधात्मक (Adversive) :

ये ऐसे निपात हैं, जो मूल प्रतिज्ञप्ति या कथ्य की दिशा को बदल देते हैं। 'पर', 'लेकिन', किन्तु', 'परन्तु', 'मगर', जैसे निपात इस कोटि के हैं।

2. 1. 1. 4. विकल्पात्मक (Alternative) :

इसके अन्तर्गत आने वाले निपात पूर्व कथित प्रतिज्ञप्ति का विकल्प प्रस्तुत

---

1. लुइस टी. मिलिक, स्टायलिस्टिक्स ऑन स्टाइल : हैंडबुक विद सिलेक्शंस (न्यूयार्क : चार्ल्स स्क्राइब्नर्स संज, 1969), पृ० 21

करते हैं। उदाहरण के लिए 'या', 'अथवा', 'वा' आदि।

2. 1. 1. 5. व्याख्यात्मक (Explanative) :

इसके अन्तर्गत ऐसे संयोजक आते हैं, जो पहले आयी प्रतिज्ञप्ति या बयान को उसकी पुनः परिभाषा अथवा व्याख्या करते हुए प्रस्तुत करते हैं। यहाँ 'जो कि', 'जो यह है', 'ऐसा है', जैसे भाषिक अंश संयोजन का प्रकार्य सम्पन्न करते हैं।

2. 1. 1. 6. निदर्शात्मक (Illustrative) :

वस्तुतः ये ऐसे भाषिक अंश हैं, जो दृष्टांत, निदर्शन या स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए वाक्य और वाक्य को जोड़ते हैं। उदाहरणार्थ—'द्रष्टव्य', 'जैसे' आदि के प्रयोग इस कोटि के हैं।

2. 1. 1. 7. परिणाममूलक (Illative) :

ये वे संयोजक हैं जिनसे निष्कर्ष निकालने का अर्थ द्योतित होता है। 'अतः' 'इसलिए', 'अतएव', 'एवं प्रकार' आदि संयोजकों के प्रयोग इस कोटि के हैं।

2. 1. 1. 8. कारणात्मक (Causal) :

पूर्ववर्ती कार्य-रूप प्रतिज्ञप्ति को कारण-संपुष्ट करने के दौरान ऐसे संयोजकों का व्यवहार किया जाता है। 'क्योंकि', 'कारण यह है' जैसे संयोजकों के प्रयोग इसके उदाहरण हैं।

2. 1. 1. 2. लांगेकर और लेविनशन के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य संरचना :

लांगेकर और लेविनशन ने प्रोक्ति को संसक्त करने वाली बाह्य संरचना को निम्नलिखित आठ रूपों में स्पष्ट किया है।[1]

2. 1. 1. 2. 1. काल और पक्ष (Time and Aspect) की भूमिका :

किसी भी प्रोक्ति की सम्पूर्ण क्रिया-पद्धति के साभिप्राय खण्डों को प्रकार्य के सन्दर्भ में वर्गीकृत किया जाता है। इस दृष्टि से विकास की मुख्य रूपरेखा के लिए प्रत्येक प्रोक्ति-प्रकार के अपने विशिष्ट काल एवं पक्ष होते हैं। किसी प्रदत्त काल, पक्ष की उपस्थिति अपनी तात्कालिकता में प्रोक्ति-प्रकार के रूप में पाठ के वर्गीकरण के विषय में हमें संकेत देती है। साथ ही आद्यंत 'पाठ' में संसक्ति मुहैया करती है।

---

1. रॉबर्ट लांगेकर और स्टीफेन लेविनशन, 'फील्ड एनालिसिस अंव डिस्कोर्स', करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट्स लिंग्विस्टिक्स, सम्पा० वुल्फगैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी. ग्रूटर, 1978), पृ० 107-109

2. 1. 1. 2. 2. निपात और प्रत्यय (Particles and Affixes) :

क्रिया के साथ नियोजित निपात और प्रत्यय एक सीमा में काल और पक्ष को रेखांकित करते हैं। पर जब निपात और प्रत्यय संज्ञा के साथ सम्बद्ध होकर वाक्य या वाक्यांश में मुक्त रूप में उपस्थित होते हैं तब ये भिन्न प्रकार की समस्या मुहैया करते हैं। ऐसी स्थिति में ये मुख्य प्रतिभागी बनाम केन्द्रीय चरित्र को रेखांकित करते हैं, गौण प्रतिभागी बनाम महत्त्वपूर्ण प्रतिभागी को दर्शाते हैं और केन्द्रीय चरित्र बनाम द्वितीय महत्त्वपूर्ण प्रतिभागी को भी सामने लाते हैं। ऐसे निपात और प्रत्यय महत्त्वपूर्ण प्रतिभागियों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं की भी सूचना देते हैं तथा भूमिका की प्रतिकूलता को भी दर्शाते हैं। ये विरोधी घटनाओं और कथ्य का परिचय देते हैं, तथा निराशा, कुंठा जैसे अन्य स्थितियों को भी दर्शाते हैं।

2. 1. 1. 2. 3. प्रतिभागी की आद्य पुनरुक्ति (Participant Anaphora) :

प्रतिभागियों को उनके नाम के द्वारा, जातिवाचक संज्ञा के द्वारा, सर्वनाम, प्रत्यय के द्वारा यहाँ तक कि शून्य के द्वारा भी पहचाना जा सकता है। आद्य पुनरुक्ति में इस प्रकार का भिन्नात्मक परिवर्तन सदैव अभिप्रेरित होता है। सामान्य तौर पर प्रतिभागी की आद्य पुनरुक्ति-शृंखला का क्षेत्र अनुच्छेद होता है। ऐसी शृंखला अनेक अनुच्छेदों तक जारी रह सकती है, यदि उसे कोई बाधित करने वाला तत्त्व सामने न हो। इस प्रकार प्रतिभागी की आद्य पुनरुक्ति भी संसक्ति की सृष्टि करती है।

2. 1. 1. 2. 4. संकेतवाचकता (Deictics) :

कुछ भाषाओं के प्रोक्ति-विन्यास में प्रतिभागियों के पदचिह्न को बनाये रखने के लिए 'यह', 'वह', 'एक', अथवा 'वह' जैसे निश्चित निर्देशी शब्दों का व्यवहार किया जाता है। ऐसे शब्दों के कभी-कभी बड़े ऊँचे विशिष्ट प्रकार्य होते हैं, जो केन्द्रीय चरित्र बनाम अन्य मुख्य प्रतिभागी अथवा मुख्य बनाम गौण प्रतिभागी अथवा उच्चतर श्रेणी बनाम निम्नतर श्रेणी प्रतिभागी अथवा कथा में पहले से विद्यमान पात्र बनाम नवागत पात्र के द्वारा निश्चित किये जाते हैं।

2. 1. 1. 2. 5. शाब्दिक बन्धन और अन्वयन :
(Lixicalties and Paraphrase)

पर्याय अथवा विपरीतार्थकता जैसे शाब्दिक सम्बन्ध और सामान्य अर्थ-क्षेत्र के एकक-द्वय प्रायः सर्वविदित हैं। ये प्रोक्ति को संसक्त करने के सन्दर्भ में बहुतेरे प्रकार्य सम्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए यह क्रिया, जो किसी प्रोक्ति के पृष्ठाधार पर विराजती है, वह कोई इत्तफाकिया तौर पर उपस्थित नहीं

होती, बल्कि इसके विपरीत वह सम्बद्ध अर्थगत क्षेत्रों से जुड़े तौर पर विशेष क्रम में प्रस्तुत होती है। पर्यायी अर्थवत्ता, विरोधी अर्थवत्ता, विषयों की आवृत्ति, संज्ञा पदबंधों के अधिजोड़ और शब्दों के ऐसे एकक जो विधाई रूप से विशेष रूप तक ऊर्ध्वाधर क्रम में जुड़े होते हैं—ये सभी अन्वयन की विभिन्नता को सम्भव बनाते हैं। अन्वयन का सम्बन्ध किसी प्रोक्ति में वाक्य और वाक्य के बीच निकटतम बन्धन को जन्म देता है और विशेष रूप में सन्निहित अनुच्छेदों को संकेतित करता है। इस सन्दर्भ में एक विशेष प्रकार के शाब्दिक बन्धन को प्रत्याशा-शृंखला (Expectancy Chain) नाम दिया जाता है। इस तरह यदि यह कहा जाय कि 'उसने उस पर गोली चलाई और वह...', तो श्रोता या पाठक के लिए उस रिक्त स्थान पर 'मर गया' का शाब्दिक बन्धन विशिष्ट निपात प्रत्यय और क्रिया-विधि से विशेषीकृत होकर उपस्थित होता है, जिसे कुंठा या विफलीकरण (Frustration) कहते हैं। इसमें ऐसी प्रत्याशा उभरती है अथवा ऐसा सह सम्बन्धन होता है जो पूरा नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए उसने बम्बई के लिए प्रस्थान किया, किन्तु वह वहाँ नहीं पहुँचा।

2. 1. 1. 2. 6. सारांश और पूर्व दर्शन (Symmary and Preview) :

'सारांश' और 'पूर्व दर्शन' को भी प्रोक्ति की बहिः संरचना के सन्दर्भ में महत्व प्राप्त है। सारांश भी एक प्रकार का अन्वयन है, जिसमें सामान्य लक्षण या प्रकथन और उसके स्थानापन्न का व्यवहार होता है। उदाहरण के लिए—'यही वह सब कुछ है जो उन्होंने किया।' 'पूर्व दर्शन' किसी प्रोक्ति मे उस पूर्व भाग को दर्शाता है, जिसका शेषांश बाद में उपस्थित होता है।

2.1.1.2.7. योजक और आरंभक (Conjunction and Introducers) :

कई भाषाओं में योजकों की अपार सम्पत्ति भरी पड़ी है। भारोपीय भाषा-परिवार की भाषाओ की यह विशिष्ट स्थिति है। दूसरे भाषा-परिवार के भाषाओं में इसका काफी अभाव दिखता है। योजकों को प्रायः कालिक बनाम तार्किक योजक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। कुछ योजक स्थानिक होते है। वाक्यों के आरम्भिक के रूप में योजक वाक्य को अनुच्छेद के सन्दर्भ मे उपस्थित करते हैं और अनुच्छेद को प्रोक्ति के सन्दर्भ में।

2.1.1.2.8. पूर्व-संदर्भ (Back-Reference) :

इस कौशल के अन्तर्गत पूर्वागत वाक्य अथवा उसका भाग आगे आवर्तित होता है। यहाँ पूर्व सन्दर्भन का हू-ब-हू होना अपेक्षित नहीं है। यह नामोक्त हो सकता है, एक पर्याय के रूप में आ सकता है, अथवा किसी दूसरे रूप में भी उपस्थित हो सकता है, महत्त्वपूर्ण यह है कि पूर्व सन्दर्भन के प्रकार्य को संवीक्षित किया जाय। कई भाषाओं में यह इतना सहजात है कि प्रोक्ति को

वाचिक अभिव्यक्ति मे प्रत्येक परवर्ती वाक्य पूर्व सन्दर्भ के साथ उपस्थित होता है ।

2. 1. 1. 3. एम. ए. के. हैलीडे के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य संरचना :

हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट संसक्ति के निम्नलिखित पाँच प्रकार किसी भी प्रोक्ति की बाह्य संरचना का सृजन करते हैं—[1]

2.1.1.3.1. निर्देशन (*Refrence*)
2.1.1.3.2. प्रतिस्थापन (Substitution)
2.1.1.3.3. अध्याहरण (*Ellipsis*)
2.1.1.3.4. शाब्दिक संसक्ति (*Lexical Cohesion*)
2.1.1.3.5. संयोजन (*Conjunction*)

2.1.1.3.1. निर्देशन (Reference) :

यह अनुवर्ती वाक्य में प्रयुक्त होने वाला यह शब्द है, जो प्राय: अन्य पुरुष सर्वनाम अथवा अथवा निश्चयवाचक सर्वनाम होता है । यह पूर्ववर्ती वाक्य में आये किसी नामिक या क्रिया-व्यापार को निर्दिष्ट करता है । यहाँ नामिक अथवा क्रिया-व्यापार के साथ पुरुषवाचक अथवा निश्चयवाचक सर्वनाम निर्देशी सम्बंध के बतौर संसक्त होता है । जैसे—'लतिका नजदीक आ गयी थी । मैंने उसके मुखड़े को गौर से देखा । उसकी मांग सूनी थी ।' यहां पूर्ववर्ती वाक्य के 'लतिका' नामिक को बाह्य संरचनात्मक रूप मे बाद के वाक्य मे आया 'उसके' सार्वनामिक संसक्त करता है ।

2.1.1.3.2. प्रतिस्थापन (*Substitution*) :

प्रतिस्थापन के अन्तर्गत अनुवर्ती वाक्य मे आने वाला शब्द ठीक उसी रूप में पूर्व वाक्य के नामिक को निर्दिष्ट नही करता, दूसरी तरफ के एकक को निर्दिष्ट करता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित प्रोक्ति को लें—

(1) क्या आपको ऐसी चायदानी चाहिए ?
(2) नही मुझे वर्गाकार चाहिए ।

उक्त प्रोक्ति में दोनों वाक्यों की संसक्ति [illegible] और के बीच बनती है । यहाँ 'वर्गाकार' 'ऐसी [illegible] संसक्त हो रहा है ।

1. एम. ए. के. हैलीड़े [illegible] न, लोंगमैन, 197[illegible] (ऑक्सफोर्ड : [illegible]

2.1.1.3.2. अध्याहरण (Ellipsis) :

'अध्याहरण' वस्तुतः रूपांतरण-पदों में लोप को कहते हैं। प्रायः अनुवर्ती वाक्य में पूर्ववर्ती वाक्य के सुव्यक्त अंश को छोड़ दिया जाता है जहाँ अनुवर्ती वाक्य अपनी पूर्णता के लिए पूर्ववर्ती वाक्य पर आधारित होता है। वार्तालाप के बीच अध्याहरण को अत्यंत महत्त्वपूर्ण संसक्ति-कौशल के रूप मे लिया जाता है। साहित्यिक वार्तालाप में अध्याहरण आत्मीय निकटता और प्रगाढ़ता को भी दर्शाता है।

2.1.1.3.4. शाब्दिक संसक्ति (Lexical Cohesion) :

शाब्दिक संसक्ति के प्रकार वाक्य-रचना के स्तर से जुड़ते हैं। यहां संज्ञा और क्रिया के द्वारा पाठात्मक संसक्ति का निर्माण दो रूपों मे किया जाता है—

2.1.1.3.4.1. शाब्दिक पुनरावृत्ति (Lexical Reitiration) :
2.1.1.3.4.2. सन्निधान (Collocolion[1] :

2.1.1.3.4.1. शाब्दिक पुनरावृत्ति (Leixic I Reiteration) :

इसमें 'निर्देशन' और 'प्रतिस्थापन' की तरह सर्वनाम अथवा दूसरे प्रतिस्थापित एकक की अपेक्षा पूर्ण शब्दों का व्यवहार होता है। पहले वाक्य मे आया शब्द अनुवर्ती वाक्य में भी आवर्तित होता है। इस रूप मे या तो वह उस वस्तु को निर्दिष्ट करता है या उसी तरह के दूसरे पदार्थ को स्थापित करता है।

2.1.1.3.4.2. सन्निधान (Coilocation) :

इसमे शब्द एक दूसरे की सहजोड़ी में आकर संसक्ति उत्पन्न करते हैं। सन्निधान को पाठात्मक संसक्ति का स्वाभाविक और अदृष्ट पहलू माना जाता है।

2.1.1.3.5. संयोजन (Conjunction) :

प्रोक्ति में वाक्यों का अनुक्रम परस्पर समंजसता की सृष्टि करता आगे बढ़ता है। इस प्रक्रिया में उनके बीच अनेक प्रकार के संबंध बनते हैं। इसमें कालिक अनुवर्तितता के अतिरिक्त कई प्रकार के तार्किक संयोजन सामने आते हैं, जिनमें निम्नलिखित तीन संयोजक महत्त्वपूर्ण हैं—

2.1.1.3.5.1. योगात्मक (Additive) :
2.1.1.3.5.2. विरोधात्मक (Adversative) :
और 2.1.1.3.5.3. कारणात्मक (Caurual) :

2.1.1.4. निल्ज एरिक एंक्विस्ट के आधार पर प्रोक्ति की बाह्य-संरचना :

एंक्विस्ट ने निम्नलिखित संसक्ति-मूलक अवयव को मूलतः पाठ की गति की (Theme Dynamics) के संदर्भ में निर्दिष्ट किया है, जिसका संबंध प्रोक्ति की बाह्य संरचना से बैठता है।[1]

2.1.1.4.1. आवर्तन (Repetition) :

इसमें पहले वाक्य में आये शब्द अथवा शब्दों को दूसरे वाक्य में दुहराया जाता है। प्रोक्ति में इस दोहराव के जरिये दो वाक्यों को एकसूत्र किया जाता है।

आवर्तन प्रोक्ति/प्रतिपाद्य में गतिकी की सृष्टि करता है। एंक्विस्ट ने इसे आरंभिक (Initial) और आंतिक (Final) स्थिति पर आधारित करते हुए इसकी चार स्थितियां निर्दिष्ट की हैं—

(1) 'आ' से 'आ' :

इस स्थिति में पहले वाक्य का आरम्भिक शब्द दूसरे वाक्य में आरंभ में ही आवर्तित होकर आता है। यहां आवर्तन प्रोक्ति को ससक्त करता है।

(2) 'आ से 'आं' :

ऐसी स्थिति में जो शब्द पहले वाक्य के आरम्भ मे आता है, वह दूसरे वाक्य के आरम्भ मे आवर्तित नही होकर उसके अंत मे आता है। यह स्थिति आद्यन्तावृत्ति को सिरजती है।

(3) 'आं' से 'आ' :

जब पहले वाक्य के अन्त में आगत शब्द दूसरे वाक्य के आरम्भ में आता है तब आवर्तन का यह प्रकार-उपस्थित होता है। इसे आवर्तन का अन्ताद्यावृत्ति मूलक प्रकार कहते हैं।

(4) 'आं' से 'आं' :

ऐसी स्थिति में पहले वाक्य के अन्त मे जो शब्द आता है, दूसरे वाक्य के अन्त में भी उस शब्द का आवर्तन होता है। आवर्तन का यह कौशल अन्तावृत्ति निर्भर होता है।

---

1. निल्ज एरिक एंक्विस्ट, लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स (द हेग : मूतन, 1973), पृ. 117-118

2. 1. 1. 4. 2. निर्देशात्मक सन्दर्भ (Reference) :

इसमें एक वाक्य मे जिस शब्द का प्रयोग होता है दूसरे वाक्य में उसको दूसरे शब्द के द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है, जिससे प्रोक्ति मे दोनों वाक्य एक-सूत्र हो जाते हैं। इस दृष्टि से पहले वाक्य में आये नामिक के लिए दूसरे वाक्य में सार्वनामिक के प्रयोग की अपेक्षा होती है।

2. 1. 1. 4. 3. पर्याय-परकता (Synonymy) :

इसमे पहले वाक्य में व्यवहृत शब्द का दूसरा पर्याय व्यवहृत होता है। इस प्रकार यहाँ पर्याय एक प्रोक्ति के दो भिन्न वाक्यों को परस्पर सूत्रबद्ध करने में समर्थ होता है।

2. 1. 1. 4. 4. विपरीतार्थकता (Antonymy) :

जहाँ पहले वाक्यांश या वाक्य में सकरात्मक शब्दों के प्रयोग होते हैं वहाँ दूसरे वाक्यांश या वाक्य में उसके विरोधी शब्दो के प्रयोग किये जाते हैं। वहाँ संसक्ति से प्रोक्ति की बाह्य संरचना संपुष्ट होती है। उदाहरणार्थ यदि किसी प्रोक्ति के पहले वाक्य में 'पुण्य' का प्रयोग हुआ हो और दूसरे वाक्य मे 'पाप' का या पहले वाक्य 'सुरूप' का व्यवहार हुआ हो और दूसरे वाक्य मे 'कुरूप' का या पहले वाक्य में 'रात' का व्यवहार हुआ हो और दूसरे में 'दिन' का, तो ऐसे वाक्य परस्पर 'विपरीतार्थकता' की दृष्टि से संसक्त होकर प्रोक्ति का निर्माण करते हैं।

2.1.1.4.5. तुलना (Comparison) :

इसके अन्तर्गत किसी प्रोक्ति के दो वाक्यों मे पहले वाक्य में व्यक्त स्थिति से तुलना की जाती है। यहाँ दोनो की समता-विषमता या आनुपातिक कमी-बेशी को निर्दिष्ट करने वाली तुलना के द्वारा प्रोक्ति को संसक्ति प्राप्त होती है।

2.1.1.4.6. उच्चावच अर्थवत्ता (Hyponymy) :

उच्चावच अर्थवत्ता पर जी. एन. लीच ने विस्तार से विचार किया है।[1]

इसे अर्थ का 'अन्तर्निवेशन' भी कहा जाता है। यह सम्बध ऐसे दो अर्थों के बीच होता है, जहां एक अवयवभूतार्थी सूत्र दूसरे सूत्र में उपलब्ध अभिलक्षणों को अपने यहाँ भी प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए 'स्त्री' शब्द 'वयस्क' शब्द की उच्चावच अर्थवत्ता है, क्योंकि जो दो अभिलक्षण 'वयस्क' को परिभाषित

---

1. जी. एन. लीच, सिमेंटिक्स (बाल्टीमोर : पेंगुइन बुक्स लि., 1974. पुनर्मुद्रण, 1976), पृ. 100-101, 120, 137, 250.

करते हैं वे दोनों ही 'स्त्री' की अवयवभूतार्थता में प्राप्त हैं—

वयस्क→ +मनुष्य
+वोट देने का अधिकार प्राप्त
स्त्री→ +मनुष्य
+वयस्क
—पुरुष

उच्चावच अर्थवत्ता को वर्णित करने का एक दूसरा तरीका वंश (Genus) और व्यवच्छेदक (Differentia) का है। इनमें जो अधिक विशिष्ट पद होता है उसे उच्चावच अर्थवत्ता कहते हैं और जो अधिक सामान्य पद होता है उसे 'पराकोटि पद' (Super-Ordinel) कहते हैं इस तरह उच्चावच अर्थवत्ता एक अर्थ को दूसरे अर्थ में समावेशी तौर पर रेखांकित करती है। उदाहरण के लिए 'पूर्वज' की उच्चावच अर्थवत्ता 'पितामह' है। उसी तरह 'लेना' की उच्चावच अर्थवत्ता 'चोरी करना' है। अंग्रेजी 'Child' की उच्चावच अर्थवत्ता अंग्रेजी 'Boy' है। 'फल' की उच्चावच अर्थवत्ता 'सेव' है।

उक्त व्यवच्छेदक समावेशी दृष्टि से उच्चावच अर्थवत्ता के दो रूप होते हैं—

2. 1. 1. 4. 6. 1. संकुचनमूलक उच्चावच अर्थवत्ता
और 2. 1. 1. 4. 6. 2. विस्तारमूलक उच्चावच अर्थवत्ता

1. संकुचनमूलक उच्चावच अर्थवत्ता :

इस रूप में सामान्य से विशेष की ओर क्रियाशीलता होती है। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—उत्सव के लिए फूल ले आया हूँ। गुलाब और गेंदा दोनों ही। यहाँ 'फूल' से 'गुलाब' और 'गेंदा' की ओर आने के कारण संकुचनमूलक उच्चावच अर्थवत्ता है।

2. विस्तारमूलक उच्चावच अर्थवत्ता :

विस्तारमूलक उच्चावच अर्थवत्ता विशेष से सामान्य की ओर क्रियाशील होती है। उदाहरणार्थ निम्नांकित प्रोक्ति को देखें—'तुम्हारे बगीचे में गुलाब खूब खिले हैं। इस मौसम में और फूल तो होते नहीं हैं।' यहाँ 'गुलाब' से 'फूल' की ओर बढ़ने के कारण विस्तारमूलक अर्थवत्ता प्राप्त होती है।

2.1.1.4.7. सहवर्गीयता या सहसदस्यता :

जब किसी प्रोक्ति के दो वाक्यों में एक ही क्षेत्र (Field) की एकाधिक-प्रयुक्तियों (Registers) का व्यवहार किया जाय तब वहाँ प्रोक्ति सहवर्गीय शब्दों के कारण संसक्त होती है। उदाहरण द्रष्टव्य है—देव-प्रतिमा के सामने वह पूजा की आसनी पर बैठ गया। सामने धूप, दीप, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य पड़े थे।

यहाँ देव-प्रतिमा, पूजा, नैवेद्य, धूपदीप, चन्दन—ये सभी सहवर्गीय शब्द हैं, जो प्रोक्ति को संसक्त कर रहे हैं।

2. 1. 2. प्रोक्ति : गहन संरचना

किसी भी प्रोक्ति की गहन संरचना यद्यपि अमूर्त होती है, पर बाह्य संरचना के प्रोक्तिपरक ढाँचे में यह गहन अर्थ को कार्यान्वित करती है। साहित्यिक या कथात्मक प्रोक्ति में समेकित अप्रस्तुत विधान, अलंकार, अतिशयोक्ति, प्रतितथ्य-परक समीकरण गहन साँचे को लागू करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। गहन सरचना के अन्तर्गत कथानक और अभिप्राय (Mo'ifs) को भी ग्रहण किया जाता है।[1]

प्रोक्ति के अन्तर्हित स्तर (Immanent Level) के अन्तर्गत प्रकार्यों के प्रारूप और प्रकर्त्ता की अवधारणा गहन सरचना-स्तर के प्रतिमान में एक सह-जोड़ी सृजित करती है।

अन्तर्हित सतह न केवल कथानक की सार्वभौमिक संरचना को आधार तत्त्व के बतौर उपस्थित करती है, बल्कि मानवीय चिन्तन की प्रतीयमान सार्वभौम संरचना को भी उपस्थित करती है।[2]

प्रोक्ति की गहन संरचना उसकी औपचारिक पुनःरचना है जिसे ग़ैरतकनीकी रूप मे प्रोक्ति का कथ्य या सूचना कहा जाता है। प्रोक्ति की इस गहन सरचना के दो भिन्न तत्त्व होते हैं, जहाँ वास्तविक वाक्यों और वाक्यों के अनुक्रमों के बीच तथा प्रोक्ति के अंशो और सम्पूर्ण प्रोक्ति के बीच अन्तर किया जाता है।

गहन संरचना पाठ-व्यवस्था के आधार को संघटित करती हैं। वानडिज्क ने स्वाभाविक तर्कशास्त्र के रूप में इसे अत्यन्त विस्तार से 1972 में प्रस्तावित किया। इसे ही 'पाठ' का तर्कशास्त्र कहा जाता है। पाठ/प्रोक्ति का यह तर्कशास्त्र वाक्यों के अनुक्रमो की तार्किक अभिव्यक्ति को प्रजनित करता है और तर्कशास्त्रीय साँचों के रूप मे क्रियाशील व्युत्पत्ति-नियमों को प्रजनित करता है।

यद्यपि डॉ० श्रीवास्तव ने वाक्य और पाठ की संरचना का रूपान्तरण पाठ की विशद संरचना (Macro-Structure) में तथा वाक्य की बाह्य संरचना का रूपांतरण पाठ की लघु संरचना (Micro-Structure) मे निर्दिष्ट किया है,

---

1. एलेक्जेन्डर झोलकोवस्की, 'पोयम्ज', डिस्कोर्स एंड लिटरेचर, संपा० टी. ए. वानडिज्क (एमस्टर्डम : जॉन बेनजामिन पब्लिशिंग कम्पनी, 1985), पृ० 110
2. इ. यू. ग्रोमेव, 'फ्रेंच स्ट्रक्चरलिस्ट विउज ऑन नैरेटिव ग्रामर' करेंट ट्रेन्ड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, संपा० वूल्फ गैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी. ग्रूटर, 1978), पृ० 156

जिसका आधार वानडिज्क का चिन्तन है, किन्तु ई. यू. ग्रोसे (Grosse) ने फ्रांसीसी चिन्तन के आधार पर बाह्य और गहन दोनों ही संरचनाओं में लघु और विशद संरचना की बात की है।[1] विशद (Macro) गहन (Micro) संरचना वहाँ होती है जहाँ घटनापरकता—निष्पन्नता—परिणाम का कम-से-कम एक प्रकर्ता उपस्थित होता है, पर लघु संरचना वहाँ होती है जहाँ घटनापरकता—निष्पन्नता—परिणाम की शृंखला मे उपस्थित रहने वाला प्रकर्त्ता (Actaust) बिना सार्वनामीकरण के सहकर्तृक (Actuer) में रूपांतरित हो जाता है। अतः प्रोक्ति की गहन संरचना में लघु (Micro) और विशद (Macro) दोनों ही संरचनाओं का विवेचन अभीष्ट है।

प्रोक्ति की गहन-संरचना को तीन विचारकों के आधार पर निम्नलिखित शीर्षकों में रेखांकित-विवेचित किया जा सकता है—

2. 1. 2. 1. वानडिज्क के आधार पर प्रोक्ति की गहन संरचना

2. 1. 2. 2. रोजर फाउलर के आधार पर प्रोक्ति की गहन संरचना।

2. 1. 2. 3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के आधार पर प्रोक्ति की गहन संरचना।

2. 1. 2[1. वानडिज्क के अनुसार प्रोक्ति की गहन संरचना :

वानडिज्क ने प्रोक्ति के द्वारा व्यक्त वाक्यों की शृंखला की पाठात्मक प्रकृति को परिभाषित करते हुए जिस सर्वाधिक विशिष्ट विशेषता की चर्चा की है वह समंजसता (Coherence) का अर्थगत अभिलक्षण है। डिज्क ने समंजसता के दो प्रकार बताये हैं[2]—

2. 1. 2. 1. 1. स्थानिक समजसता (Local Coherence)
और 2. 1. 2. 1. 2. व्यापक समंजसता (Global Coherence)

2. 1.2. 1. 1. स्थानिक समजसता (Local Coherence) :

स्थानिक समंजसता लघु संरचना (Micro-Structure) के स्तर पर क्रियाशील होती है। इसे पाठात्मक अनुक्रम के वाक्यों के बीच के सम्बन्धों पर विचार करने के क्रम में परिभाषित किया जाता है। यह शब्दो, वाक्यांशों और वाक्यों के योग में क्रियाशील होती है। प्रतिज्ञप्तियाँ इन्हो भाषिक सामग्रियों

1. ई. यू. ग्रोसे, 'फ्रेंच स्ट्रक्चरलिस्ट विउज ऑन नैरेटिव ग्रामर,' करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्सट लिंग्विस्टिक्स, संपा० वूल्फ गैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी ग्रूटर, 1978), पृ० 156
2. टी. ए. वानडिज्क, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग: मूतन, 1981), पृ० 268

से स्वरूपित होती हैं। प्रोक्ति की इस लघु संरचना में प्रतिज्ञप्तियाँ क्रमशः किसी कथ्य के ब्योरेदार विस्तृत स्वरूप को निरूपित करती हैं। इसके विपरीत विशद संरचना में प्रतिज्ञप्तियां मुख्य घटनाओं के आधार पर पाठ को साकल्यपरक संघटना को निरूपित करती है। लघु संरचना-स्तर पर प्रतिज्ञप्तियाँ उच्चतर क्रम-इकाइयों में अर्थपरक विशद नियमों के द्वारा संघटित होती हैं। लघु संरचना में स्मरण की व्यापकता नही होने का कारण स्थानिक समंजसता ही है।

लघु संरचना-स्तर पर क्रियाशील स्थानिक समंजसता के लिए आधार रूप में व्यापक समंजसता वाली निष्पन्न संरचना की उपेक्षा को नकारा नही जा सकता है। निम्नलिखित वाक्यों को लें—

1. मैंने टिकट खरीदा और अपनी जगह पर चला गया।
2. मैंने टिकट खरीदा और प्लेटफार्म की ओर बढ़ गया।
3. मैंने टिकट खरीदा और स्विमिंग पूल मे छलांग लगा ली।

ऊपर उपस्थित प्रत्येक प्रोक्ति-अंश सार्थक और स्थानिक तौर पर समंजस है, पर यह सार्थकता और समंजसता इनकी विशद संरचना से संबद्ध है। कहना न होगा कि उक्त प्रत्येक प्रोक्ति-अंश क्रमशः 'मैं सिनेमा गया', 'मैंने ट्रेन पकड़ी', और 'मैंने तैराकी की', जैसी कथ्यबीजात्मक विशद संरचना के सन्दर्भ मे ही सार्थक और समंजस है।[1]

वानडिज्क ने लघु संरचनात्मक स्थानिक समंजसता को दो रूपों मे निर्दिष्ट किया है—2. 1. 2. 1. 1. 1. तथ्य-निर्भर लघु संरचनात्मक स्थानिक समंजसता और 2. 1. 2. 1. 1. 2 तत्व-निर्भर लघु संरचनात्मक स्थानिक समंजसता।

2. 1. 2. 1. 1. 1. तथ्य-निर्भर लघु संरचनात्मक स्थानिक समंजसता :

लघु सरचना मे दो प्रतिज्ञप्तियाँ उस स्थिति में परस्पर संयुक्त मानी जाती हैं जब उनसे व्यक्त होने वाले तथ्य परस्पर संबद्ध होते हैं। ऐसे संबन्ध सप्रतिबंध हुआ करते हैं। प्रतिज्ञप्ति से निरूपित होने वाला पहला तथ्य या तो परवर्ती तथ्य को अनुमत करता है या उसकी संभावना बताता है अथवा उसकी अपेक्षा रखता है। यहाँ तक कि इन तथ्यों के बीच कालिक और क्रियार्थद्योतक सम्बन्ध भी अन्तर्मुक्त होते हैं, कोई तथ्य पहले आ सकता है, कोई साथ-साथ उपस्थित हो सकता है, और कोई पहले का अनुगमन कर सकता है, जहाँ जिसकी और जैसी, प्रतिबंधित सम्बन्ध के बतौर, अपेक्षा होती हो। कोई तथ्य महज जोड़ने

1 वानडिज्क, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग : मूतन 1981), पृ० 268

वालीप में रुकड़ी के भी उपस्थित हो सकता है।[1]

2. 1. 2. 1. 1. 2. तत्त्व-निर्भर लघु संरचनात्मक स्थानिक समंजसता :

लघु संरचना के स्तर पर प्रोक्तिपरक (वाक्य और वाक्य के बीच का) समंजस सम्बन्ध विधेय (Predicates) और तर्क (Argu:=ments) जैसे वाक्य-गत तत्त्वों, (Elem n's) के आपसी सम्बन्धों पर भी निर्भर करता है। इस दृष्टि से संबंधित प्रतिज्ञप्तियों में गुणधर्म और व्यक्ति समरूप हो सकते हैं, या उनका सम्बन्ध परस्पर सामीप्य का, अन्तर्भावन का और आधिपत्य का हो सकता है। पर इन सबसे भी स्थानिक समंजसता तभी स्वरूपित हो पाती है जब प्रति-ज्ञप्ति के सारे तथ्य सहसंबद्ध हो, तथ्य (Facts)-निर्भर हो। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को लें—

'नवीन सिनेमा गया। उसकी आँखें नीली हैं।'

यहाँ ये दोनो वाक्य स्थानिक समंजसता का उदाहरण नही बन पा रहे हैं, यद्यपि ये दोनों ही वाक्य व्यक्ति-विशेष नवीन के ही विषय मे दो संकेत प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लघु संरचना-स्तर पर स्थानिक *समंजसता प्राय. एक संभावित समाज, एक स्थिति या घटनाओं की एक दिशा से* तथ्यों के संबद्ध होने पर ही स्वरूपित हो पाती हैं।[2]

वस्तुत. लघु-संरचना (Micro-St uctu'e) के स्तर पर अर्थ-वैज्ञानिक गह-नता प्रोक्ति के वाक्यों के अनुक्रम को प्रतिज्ञप्ति का अनुक्रम सौंपती हैं। कुछ प्रति-ज्ञप्तियाँ एक वाक्य द्वारा भी अभिव्यक्त होती हैं, जो अर्थीय, तथ्यकीय और शैलीय अवयवों पर आधारित होती हैं। यहाँ वे प्रतिज्ञप्तियों के अनुक्रमों और मिश्रित प्रतिज्ञप्तियों से जुड़ती हैं। वे मूलतः युग्म तौर पर संग्रथित होती हैं, जैसा स्वाभा-विक भाषा मे सयोजकों के द्वारा अभिव्यंजित होता है। पर योजकों की स्थितियाँ तथ्यों के बीच के सम्बन्धों पर आधारित होती हैं। ये संभावित समाज मे प्रति-ज्ञप्ति के अभिधेयक और प्रोक्ति-विषयक प्रासंगिकता पर आधारित होती हैं। कहना न होगा कि संयोजक विशेष प्रकार की समंजसता ही हैं, जिन्हे प्रतिज्ञप्ति के अनुक्रम के बतौर परिभाषित किया जाता है। पर ये केवल प्रोक्ति के विषय की प्रासंगिकता और सम्भावित समाज में तथ्यों के बीच के सम्बन्ध के बतौर परिभाषित नही होते, बल्कि प्रतिज्ञप्तियों के अंशो के बीच आन्तरिक और बाह्य शर्त के रूप मे परिभाषित होते रहते हैं। प्रतिज्ञप्तियो के ये भाग, विधेय, तर्क

---

1. वानडिज्क, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग : मूतन 1981), पृ० 269
2. टी. ए. वानडिज्क, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग : मूतन, 1981), पृ० 269

और परिमाण वाचक विशेषण के रूप में उपस्थित होते हैं।[1]

2. 1. 2. 1. 2. व्यापक समंजसता (Global Coherence) :

व्यापक समंजसता विशद सरचना Macro Structure) के स्तर पर क्रियाशील होती है। इसे वाक्यों के सारे कुलकों के रूप मे परिभाषित किया जाता है। यहां प्रोक्ति साकल्य के रूप में उपस्थित होती है। व्यापक समजसता को ऐसी प्रोक्ति के साराश, विचार या कथ्यबीज के रूप में ग्रहण किया जाता है।

विशद संरचना प्रोक्ति की अर्थीय अभिव्यक्ति-स्तर की विशद और व्यापक अर्थवत्ता है। यह कहानी के समंजस निर्वचन के लिए आधार प्रस्तुत करती है। अनुच्छेदों मे विशद प्रतिज्ञप्तियां अर्थीय अभिव्यक्ति की उच्चतर सतह पर दूसरी विशद प्रतिज्ञप्तियो के द्वारा सन्निविष्ट की जाती हैं। विशद संरचना पाठन और वाचन के दौरान क्रियाशील रहती है तथा इसके बाद ही अस्तित्वमय हो पाती है। किसी भी कहानी या कथात्मक प्रोक्ति के अनिवार्य घटक के रूप में विशद संरचना को रेखांकित किया जाता है।

वानडिज्क ने गहन सरचना की समंजसता पर विचार करते हुए बाह्य-संरचना की समंजसता से उसका अन्तर स्पष्ट किया है। उसके अनुसार जो पाठ बाह्य-संरचना के स्तर पर समंजसता नही दिखाते वे प्रायिक तौर पर बड़े अनुपात में गहन संरचना के स्तर पर समंजसता दिखाते हैं।

वानडिज्क ने विशद सरचना पर विचार करते हुए उसके नियम, उसकी कोटियों और उसकी प्रतिज्ञप्तियो पर विचार किया है। उसका विशद संरचना मूलक चिंतन निम्नलिखित उपशीर्षकों मे विवेच्य है—2.1.2.1.2.1. विशद-संरचना के नियम, 2.1.2.1.2.2. विशद संरचना की कोटियां और 2.1.2 1.2.3. विशद संरचना की प्रतिज्ञप्तियां।[1]

2. 1. 2. 1. 2. 1. विशद संरचना के नियम :

वानडिज्क ने विशद संरचना-विषयक चार प्रकार के नियमों का उल्लेख किया है, जिन्हें उसने एम० आर० (मैक्रो रूल्ज) कहा है। इन्हें हिन्दी में वि० नि० (विशद नियम) कहा जा सकता है। इन नियमों मे पहला नियम 'अध्या-हरण' का, दूसरा 'सामान्यीकरण का, तीसरा 'चयन' का और चौथा 'प्रवचन' का है।

1. टी. ए. वानडिज्क, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऐंड डिस्कोर्स (द हेग: मूतन, 1981), पृ० 268

2.1.2.1.2.1.1. वि० नि०—1 अध्याहरण (Ellipsis) :

इसमें प्रतिज्ञप्तियों के अनुक्रम में से अध्याहरण किया जाता है, जो प्रोक्ति-निर्देशी आकस्मिक अभिलक्षण को संकेतित करते हैं।

2.1.2.1.2.1.2. वि० वि०— 2 सामान्यीकरण (Genralization) :

यहाँ प्रतिज्ञप्तियों मे से किसी लघु प्रतिज्ञप्ति की तात्कालिक परा-अवधारणा को परिभाषित करने वाली प्रतिज्ञप्ति के द्वारा किसी भी अनुवर्त्तन को प्रतिस्थापित किया जाता है।

2.1.2.1.2.1. 3. वि० नि०—3 चयन (Selection) :

यहाँ प्रतिज्ञप्तियों के अनुक्रम मे से किसी दूसरी प्रतिज्ञप्ति द्वारा संकेतित तथ्य के परिणाम या घटक या सामान्य स्थिति को अभिव्यक्त करने वाली सभी प्रतिज्ञप्तियों को अध्याहृत कर चयन प्रस्तुत किया जाता है।

2.1.2.1.2.1.4. वि० नि०—4 प्रचन (Construction) :

यहाँ प्रतिज्ञप्तियों के अनुक्रम में से प्रत्येक अनुवर्त्तन को एक प्रतिज्ञप्ति के द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है, यदि वे उन्हें प्रतिस्थापित करने वाली विशद प्रतिज्ञप्तियों के परिणाम या घटक या सामान्य स्थितियों को संकेतित करते हैं।

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि वि० नि० —1. और वि० नि०—2 में सूचना अप्राप्य रूप मे होती है, जबकि वि० नि० 3. और वि० नि० 4 में सूचना आंशिक तौर पर अवधारणा के सामान्य ज्ञान और सामान्य स्थिति—घटकों और अनुवर्त्तन से जुड़े मनोभाव—के द्वारा प्राप्य होती हैं।

2.1.2.1.2.2. विशद संरचना की कोटियाँ :

वानडिज्क ने प्रोक्ति की विशद संरचना से जुडी कुछ कोटियों का भी उल्लेख किया है। जो निम्नलिखित हैं—

2.1.2.1.2.2.1. परिदृश्य (Setting)
2.1.2.1.2.2.2. जटिलता (Complication)
2.1.2.1.2.2.3. प्रस्ताव (Resolution)
2.1.2.1.2.2.4. मूल्यांकन (Evaluation)
2.1.2.1.2.2.5. नीति-वचन (Moral)

विशद संरचना को संघटित करने वाली ये कोटियाँ आख्यानक की ऊर्ध्वाधर वाक्य-रचना और क्रिया-वर्णन से और अधिक सामान्य अवधारणाओं पर आधारित होती हैं। ये क्रिया की अवधारणा, क्रिया की सफलता की शर्तों, क्रिया के अनुवर्त्तक घटक और स्थितियों तथा क्रिया के विभिन्न प्रारूपों पर आधारित

होती हैं । सामान्य तौर पर क्रिया-प्रोक्ति के लिए आधारित होने वाले विशद नियमों को अलग-अलग उल्लिखित किया जाता है, क्योंकि यह ज्ञात है कि अभिसूचन-अमूर्तन के खास-स्तर तक किस तरह की प्रतिज्ञप्तियां समीचीन क्रिया-विवरण में प्रासंगिक हैं और किस तरह की नहीं ।

2.1.2.1.2.3. विशद संरचना की प्रतिज्ञप्तियाँ :

एक प्रदत्त क्रिया-प्रोक्ति में सामान्य तौर पर निम्नलिखित प्रकार की प्रतिज्ञप्तियां निकाली जा सकती हैं ।

2.1.2.1.2.3.1. क्रिया के लिए कारणों, उद्देश्यों, अभिप्रायों का विवरण और क्रियाओं का मानसिक-अनुवर्त्तन ।
2.1.2.1.2.3.2. घटनाओं के वैकल्पिक सम्भाव्य मार्ग का विवरण ।
2.1.2.1.2.3.3. ऐसी सहायक क्रियाओ का विवरण, जो सामान्य हैं ।
2.1.2.1.2.3.4. स्थितियो के अभिलक्षणो का विवरण ।
2.1.2.1.2.3.5. घोषित आवर्तित और पुनर्गृहीत या टिप्पणित या दूसरी प्रतिज्ञप्तियों पर टिप्पणी की जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों का अधिविवरण ।
2.1.2.1.2.3.6. वार्त्तालाप का विवरण ।

इन नियमों का अनुप्रयोग किसी भी क्रिया-प्रोक्ति के लिए एक विशद संरचना प्रस्तुत करती है । आख्यानक कोटियाँ भी यह अपेक्षा रखती हैं कि प्रत्येक कोटि विशद संरचना में अवश्य प्रस्तुत हो । दूसरे शब्दों में आख्यानक प्रोक्ति की विशद संरचनाएँ अपने-आप में आख्यानक संरचना उपस्थित करती हैं ।

2.1.2.2. रोजर फाउलर के आधार पर प्रोक्ति की गहन संरचना :

रोजर फाउलर ने गहन सरचना, जिसे वाक्य या प्रोक्ति में निहित अमूर्त कथ्य कहा गया है, के दो पहलू निर्दिष्ट किये हैं[1]—

2. 1. 2. 2. 1. प्रतिज्ञप्ति (Proposition) और
2. 1. 2. 2. 2. वृत्तिकता (Modality)

2.1.2 2.1. प्रतिज्ञप्ति (Proposition)

गहन सरचना के प्रतिज्ञप्तिमूलक भाग का विश्लेषण वस्तुतः संज्ञानात्मक कथ्य का केन्द्रक है, जिस पर सारा अर्थ निर्मित होता है । प्रतिज्ञप्ति वस्तुतः अर्थपरक नाभिक है और प्रतिज्ञप्ति का नाभिक विधेय (प्रेडिकेट) अनेक प्रकार

1. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक्स ऐंड द नॉवेल (लंदन : मेथुइन, 1977 पुनर्मुद्रण, 1979), पृ० 12

के अर्थ-प्ररूपों में वर्गीकृत होता है। इनमें चढ़ने, दौड़ने, हंसने, जैसी 'क्रियाएँ, विश्वास करने, सुनने, जानने, उदास होने जैसी 'स्थितियाँ' और तोड़ने, बन्द करने जैसी 'स्थितियों का बदलाव' सम्मिलित होता है। 'प्रतिज्ञप्ति' में 'क्रिया' और 'स्थितियों' का परिवर्तन सामान्यतः क्रियाओं के द्वारा ही अभिव्यक्त होता है, जबकि 'स्थितियाँ' विशेषण के द्वारा अभिव्यक्त होती है और इनका विधेय (Predicate) जानना, सुनना, देखना, क्रियाओं के द्वारा अन्वित होता है।[1]

प्रतिज्ञप्तिमूलक विधेय बहुतेरे मूल अर्थगत प्ररूपों में उपस्थित होता है, जो उनको दिलचस्प तौर पर इस संसार के बहुत नजदीक से उत्तर देता हुआ दिखाई देता है। यह मनुष्य के द्वारा व्यक्त गुण, धर्म, कर्म और परिवर्तन को प्रत्यक्ष करने के मार्ग का बुनियादी अन्तर भी स्पष्ट करता है। इसमें कुछ कार्य-व्यापार हैं, जैसे चढ़ना, दौड़ना, हँसना, शोर करना; कुछ स्थितियाँ हैं, जैसे विश्वास करना, सुनना, जानना, लम्बा, उदास, चौड़ा, और कुछ स्थितियों का बदलाव है जैसे तोड़ना, बन्द करना, फैलाना। इनमें क्रियाएँ और स्थितियों का बदलाव सामान्यतः क्रियाओं के द्वारा अभिव्यक्त होता है, जबकि स्थितियां क्रियाओं और विशेषण के द्वारा। नाभिक प्रायः विधेय से व्युत्पन्न होते हैं, जो विभिन्न अर्थीय प्ररूपों के अन्तर्हित विधेयों की शृंखला को प्रच्छन्न करते हैं। जैसे भाईचारा (स्थिति), राष्ट्रीयकरण (स्थिति का बदलाव) और घोषणा (क्रिया-व्यापार)। कोई भी प्रतिज्ञप्ति एक संज्ञा या कई संज्ञाओं के साथ विधेय को जोड़कर पूर्ण हो जाती है। यदि एक विधेय एक घटना या किसी मामले की स्थिति को सम्प्रेषित करता है, तो इसमें सहयुक्त संज्ञाएं घटना-विशेष में प्रतिभागियों को निर्दिष्ट करती हैं। विधेय और संज्ञा के बीच दो प्रकार के सहसंबंध द्रष्टव्य हैं। पहले तो विधेय का चयन संज्ञा की संख्या को निर्धारित करता है, जिसे साथ चलने के लिए चुना जा सकता है। यहाँ यह उस अर्थ को पूर्णता देने के लिए कभी एक और कभी एक से अधिक नामों को चुनता है। यथा—'मनीष लम्बा है अथवा 'एक प्रसन्न बालिका।' क्रिया-व्यापार मूलक विधेय एक संज्ञा की अपेक्षा रखता है, जो सक्रिय प्रतिभागी को निर्दिष्ट करती है। जैसे—'बच्चों ने गाया या 'गाती चिड़ियां।' 'स्थितियों के बदलाव' का विधेय साथ चलती संज्ञाओं से जुड़ता है। जैसे—

खिड़की टूट गयी।
श्वेता ने खिड़की तोड़ी।
श्वेता ने पत्थर से खिड़की तोड़ी।

1. रोजर फाउलर, 'डीप स्ट्रक्चर एंड सर्फेस स्ट्रक्चर : एलिमेंट्स ऑव डीप स्ट्रक्चर, लिंग्विस्टिक्स एंड द नॉवेल, (लण्डन : मेथुइन, 1977, पुनर्मुद्रण 1979), पृ. 12, 13, 14,

यहां संज्ञा और विधेय के बीच का सम्बन्ध उस तथ्य से जुड़ा है, जिसमें विशेष प्रकार की संज्ञाओं के विशेष प्रकार के विधेय के साथ जुड़ने पर विचार किया जाता है। गहन संरचना में संज्ञाएं विभिन्न भूमिकाएं अदा करती हैं। इन संज्ञाओ के अर्थ पर विचार किया जाता है। मूलतः कई संज्ञाओ को वहन करने वाले एक विधेयात्मक वाक्य पर, जैसे—'श्वेता ने पत्थर से खिडकी तोड़ी।' तब यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि विभिन्न संज्ञाएं विधेय के साथ विभिन्न भूमिकाए अदा करती हैं। उक्त वाक्य में श्वेता एक क्रिया-व्यापार की सजीव 'उत्तेजक' के बतौर सामने आती है, जहां उसकी भूमिका प्रकर्त्ता की होती है। इसी तरह 'बच्चों ने नाचा' वाक्य में 'बच्चे' और 'गाती चिड़ियां' में 'चिड़िया' भी प्रकर्त्ता की भूमिका मे हैं। पर पहले आये वाक्य 'मनीप लम्बा है' और 'एक प्रसन्न बालिका' में 'मनीप' और 'बालिका' प्रकर्त्ता नही हैं, क्योंकि वहाँ कोई कार्य-व्यापार सम्पन्न नही हो रहा है। इसी तरह 'खिड़की' प्रकर्ता नहीं होकर कर्म है। पर यह कर्म व्याकरण का बाह्य-संरचनात्मक कर्म है, बल्कि अर्थपरक गहन संरचनात्मक भूमिका अदा करने वाला कर्म नही है, जो श्वेता की क्रिया के द्वारा 'टूटने' की स्थिति मे आया है। स्पष्ट है कि कोई भी अर्थपरक कर्म बाह्य-संरचनात्मक रूप मे वाक्य की बहुतेरी स्थितियों मे उपस्थित हो सकता है। यहाँ तक कि वह कर्त्ता की जगह भी ले सकता है और क्रिया के पहले भी आ सकता है। उदाहरण के लिए 'खिड़की टूटी', 'चाबी रख दी गयी।' पर प्रतिज्ञप्ति के अधीन इनका अध्ययन गहन संरचना को ही स्पष्ट करता है। वस्तुतः यह संज्ञा और विधेय के बीच का सम्बंध है, जो प्रतिज्ञप्ति के अर्थीय स्तर को प्रतिष्ठित करता है, जहाँ प्रकर्ता और क्रिया जैसे सम्बंध को रेखांकित किया जाता है।

2. 1. 2. 2. 2. वृत्तिकता (Modality) :

वृत्तिकता के अन्तर्गत वैसे सारे अभिलक्षणो का समावेश होता है, जिसे वक्ता या लेखक की अभिवृत्ति, प्रतिबद्धता, किसी उद्गार मे प्रतिज्ञप्तिमूलक वस्तु की अनुप्रयोज्यता या मूल्यवत्ता और सहवर्त्ती रूप मे सम्बोधिती के साथ उसकी नातेदारी के बतौर देखा जा सकता है।[1]

यद्यपि भाषा में क्रियार्थद्योतक (Modal) या क्रियाविशेषण के द्वारा अभिव्यक्त होने वाले प्रतीति-विशेषक या प्रतिबद्धता-निर्देशक को भाषाविज्ञान के पारम्परीण अर्थ मे वृत्तिकता (Modality) को संघटित करने वाला माना जाता है किन्तु फाउलर इसे अधिक बृहत्तर एवं व्यापक अर्थ में व्यवहृत करता

1. रोजर फाउलर, 'एलिमेंट्स ऑव डीप स्ट्रक्चर, लिंग्विस्टिक्स एंड द नॉवेल (लडन : मैथुइन एंड कं. 1977, पुनर्मुद्रण, 1979), पृ. 13.

है। वह इसे भाषा के साम्प्रेषणिक व्यापार में वैयक्तिक और अन्तर-वैयक्तिक प्रतिभागिता, प्रतिज्ञप्तिमूलक सामग्री तथा सम्बोधिती के प्रति प्रसन्न वक्ता की अभिवृत्ति, निष्पन्न होने वाला विशेष वचन-कर्म और जहां प्रासंगिक हो, वहाँ श्रोता और सम्बोधिती पर उसके अभिप्रेत प्रभाव के साथ जोड़ता है।[1]

फाउलर के अनुसार आख्यानक प्रोक्ति में वृत्तिकता सीधे तौर पर 2.1.2.2.2. 1. दृष्टिकोण, 2.1.2.2.2.2. लेखकीय और उत्तारकीय स्वर 2.1.2.2.2.3. रचनाकार और चरित्र-संबंध, 2.1 2.2.2.4. व्यक्ति शैली और 2.1.2.2.2.5. सामाजिक संरचना की विकसित बनाम प्रतिबंधित भाषिकता से जुड़ती है।[2]

2.1.2.2.2.1. दृष्टिकोण (Point of View) :

वृत्तिकता के अन्तर्गत दृष्टिकोण को व्यापक महत्व प्रदान किया गया है। इसका विवेचन दो रूपों मे प्राप्त होता है—

2.1.2.2.2.1.1. दृष्टिकोण. परिप्रेक्ष्य (Point of View : perspective)

2.1.2.2.2.1.2. दृष्टिकोण : अभिवृत्ति (Point of View : *Attitude*)

परिप्रेक्ष्य जहाँ देखने की बाह्य स्थिति के साथ जुडता है वहाँ अभिवृत्ति आन्तरिकता के साथ जुड़ती है।

2.1.2.2.1.1. दृष्टिकोण : परिप्रेक्ष्य (Point of View : perspective) :

वृत्तिकता के अन्तर्गत दृष्टिकोण का परिप्रेक्ष्य चाक्षुष कलाओ मे देखने की स्थिति से जुड़ता है। वस्तुतः यह वह कोण है, जिससे अभिव्यक्त होने वाली वस्तु को देखा जाता है। चित्रकला प्रायः परिदृश्यात्मक साँचे मे रची जाती है। *यह साँचा एक विशेष नुकते से देखे जाने की माँग करता है।* चित्रकार अपनी कृति को ऐसी संरचना इस रूप में प्रदान करता है, मानो यह दृश्य स्थिति आदर्श दर्शक को अपनाने का अधिदेश दे रही है। ठीक उसी प्रकार साहित्यिक पाठों मे भी रचनाकार और पाठक के बीच के रिश्ते और उसकी समस्या होती है। इसमें स्थल और काल दोनो दृष्टियों से स्थिति का अंकन अन्तर्हित होता है। रचयिता और कथाकार को बहुत दूर या बहुत नजदीक रहना होता है। उसे

---

1. रोजर फाउलर, 'एलिमेंट्स ऑव डीप स्ट्रक्चर, लिंग्विस्टिक्स ऐंड ■ नावेल (लंदन : मैथुइन एण्ड कं., *1977*, पुनर्मुद्रण, *1979*), पृ. *43*
2. वही, पृ. 71-122

ऐतिहासिक तथ्यों के सम्पादक के बतौर पेश होना पड़ता है अथवा गवाह के बतौर सामने आना होता है। ऐतिहासिक कहानियों और में रचनाकार अपने और पाठकों के बीच काल का ऐसा अन्तराल करता है। कालगत दूरी मृतकालीन वाक्यों के द्वारा छूट चुकी आदतों रीतियों को अच्छी तरह पेश करती है। हेमिंग्वे के यहाँ आख्यानककार मे अप्रतिबद्ध दीखता है। पर वह एक निश्चित दर्श्य स्थिति किसी भोजनकक्ष मे 'फ़िट' किए गए कैमरे की तरह मुहैया करता है। इस तरह परिदृश्य के अन्तर्गत स्थलीय और कालिक चेतना को महत्त्व दिया जाता है।[1]

स्पष्ट है कि परिप्रेक्ष्य वस्तुतः वह दृश्य अक्ष है, जिसके अन्तर्गत घट रही घटना को 'समय' और 'स्थान' के नज़रिये से निर्दिष्ट किया जाता है। हिन्दी में डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने 'दृश्य' अक्ष पर फाउलर के चिंतन के सन्दर्भ में विचार किया है[2] तथा डॉ० 'शीतांशु' ने भारती की 'काव्य-प्रोक्ति' 'मुनादी' का इस दृष्टि से विवेचन किया है।[3]

2.1.2.2.1.2. दृष्टिकोण : अभिवृत्ति (Point of View : Attitude)

परिदृश्य के साथ अभिवृत्ति का नुकता महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत अभिव्यक्त वस्तु के प्रति निश्चित दृष्टि को ग्रहण किया जाता है, जिसका महत्त्व संरचना में बुनियादी तौर पर मान्य है। 'दृष्टि' में रचयिता के स्वर को रेखांकित किया जाता है। वस्तुतः रचनात्मक प्रोक्ति में यह 'प्रच्छन्न' वक्ता होता है, जो अपने विषय के साथ खासतौर पर जुड़ा होता है और पाठकों के प्रति मुद्रा ग्रहण करता चलता है। सी. बूथ (C. Booth) के अनुसार कोई भी रचना जो रचनाकार द्वारा रची जाती है, वह न तो तटस्थ होती है और न वस्तुनिष्ठ। हमें प्रत्येक रचना के भीतर से एक प्रच्छन्न वक्ता झांकता हुआ मिल सकता है। बूथ कृति की संरचना में निहित इस 'दृष्टि' को केन्द्रीय तथ्य के बतौर स्वीकार करता है। वस्तुतः भाषा एक अत्यंत सशक्त और प्रतिबद्ध माध्यम है, जो हमें बिना किसी 'दृष्टि' को अभिसूचित किये कुछ भी कहने के लिए अनुमत नहीं करती है। जब हम बोलते या लिखते हैं, तो हमारे वे शब्द या वाक्य, जिन्हें

---

1. रोजर फाउलर, 'डिस्कोर्स', लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड द नावेल, (लंदन : मैथुइन एण्ड कं., 1977, पुनर्मुद्रण 1979), पृ. 72
2. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, 'प्रोक्ति और दृष्टिशैली' संरचनात्मक शैली-विज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ. 87-88
3. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' 'मुनादी : दृश्य अक्षीय विश्लेषण, भारती की काव्यभाषा (करनाल : नटराज पब्लिशिंग हाउस, 1985), पृ. 91-93

ं या श्रोता के लिए हम चुनते हैं, इस तरह की सशक्त साभिप्रायता का वहन करते हैं।

भाषा के साथ सांसारिक दृष्टि और समुदाय दोनों की निस्संदिग्ध पारस्परिक संबद्धता भी प्रोक्ति की गहन संरचना की अभिवृत्ति से जुड़ी है। यही अन्तर-वैयक्तिक भाषिक संरचना को विचारात्मक उत्तर प्राप्त होता है।

दृष्टिकोणमूलक अभिवृत्ति का एक और रूप भाषा की गहन संरचना में चयनित वाक्य-संरचना और शब्दावली से जुड़ा है, जहाँ यह सामाजिक वर्ग की प्रकृति और संरचना का द्योतक सिद्ध होता है।

दृष्टिकोणमूलक अभिवृत्ति के रूप में प्रोक्ति-भाषा रचनाकार की विषयवस्तु की अवधारणा से अभियोजित होती है। आख्यानकीय प्रोक्ति में उत्तारक की भाषा पात्रों की चेतना की भाषा के प्रति और संरचना के प्रति अपनी प्रति क्रिया व्यक्त करती है। मिखाइल बख्तिन के अनुसार यही 'एक स्वर का दूसरे स्वर पर प्रभाव, एक पात्र की चेतना का उत्तारकीय भाव-बोध और वाकोपवयाकी (डॉयलॉजिक) 'संरचना' है।[1]

2.1.2.2.2.2. लेखकीय और उत्तारकीय स्वर (Author's and Narrator's Voice)

कोई भी आख्यानक प्रोक्ति लेखकीय/आख्यानकीय स्वर से युक्त होती है। गहन संरचनात्मक स्तर पर इसे पहचानने और सुनने की अपेक्षा होती है।

बूथ ने लिखा है कि रचना मे बोलने वाले बहुतेरे स्वरो के बीच अन्तर करने की आवश्यकता है। उसके अनुसार किसी भी आख्यानक को सीधे या नाटकीय रूप में केवल 'दिखाया' या पेश नही किया जाता है। कोई भी रचना बिना रचनाकार की दखलअदाजी और टिप्पणी के स्वरूपित नही हो पाती है। किसी भी रचनात्मक प्रोक्ति मे बराबर एक वक्ता बना होता है जो अपनी दखलअंदाजी और टिप्पणी से बाज नही आता। रूसी रूपवादियो ने जो 'फेबुला' और 'सुजेत' का अन्तर किया था, उनमे 'सुजेत' इस दखलअदाजी को ही पेश करता है जहाँ रचना रचनाकार केद्वारा व्यवस्थित और सम्पादित की जाती है। प्रश्न यह उठता है कि रचना मे वस्तुतः यह बोलने वाला व्यक्ति कौन है? बूथ के अनुसार एक वास्तविक रचयिता होता है और एक प्रच्छन्न रचयिता। वास्तविक रचयिता वह है जो नाश्ता के बाद अपनी मेज पर अपनी कलम या टाइपराइटर लेकर बैठ जाता है, पर रचना मे इस वास्तविक रचनाकार की दृष्टि या अनुभवों के विषय मे नहीं सोचा जाना चाहिए। यह सही है कि किसी रचनाकार की रचना को पढ़ते हुए रचनाकार के विषय में हम ...

---

1. उद्धृत, रोजर फाउलर, 'डिस्कार्स', लिंग्विस्टिक्स ऐंड द नावेल (लंदन : मथुइन एण्ड कं. 1977, पुनर्मुद्रण, 1979), पृ. 78.

जितना जानते हैं, उसके साथ-साथ उसे समझने की कोशिश की जात
एक व्यक्ति-रचनाकार के विषय मे हम जो भी जानते हैं, उसे दूस
रचनाकार के संदर्भ में लागू नही कर सकते हैं। बूथ ने इसके बावजूद
कार के द्वारा पेश किये गये रचनात्मक सिद्धांत के बतौर 'प्रच्छन्न रचना
की धारणा को अधिमानता प्रदान की है। किसी रचनाकार का अभिक
उसके लेखक और उसके पाठक दोनों को उपस्थित करता है। यह वास्तव मे
रचना की संरचना है, जो रचनाकार की परिभाषा करने में अपना योगदान
करती है। रचना में कौन बोलता है, इसका उत्तर यह दिया गया है कि रचना
स्वयं बोलती है, पर यह भी कहा गया है कि रचना के अर्थ का एकमात्र उत्पादक
केवल पाठक होता है। 'प्रच्छन्न रचनाकार' की धारणा के साथ इन दोनों
मान्यताओं की संगति बैठती है। 'पाठ' स्वय बोलता है—यह धारणा अपना
सही स्रोत या उत्स आख्यानक प्रोक्ति के स्वर के लिए भाषा की जनपरम्परा
में प्राप्त करती है, जहाँ रचनाकार एक सरलीकृत माध्यम के रूप में प्रस्तुत
होता है। रचना जो एक बार लिखी जाती है लेखन-कर्म से मुक्त हो जाती है
और 'जन' की हो जाती है। आख्यानक रचना संस्कृतियो की परम्पराओं की
अन्तर-क्रियाओ से उत्पन्न होती है तथा अन्तर-वैयक्तिक रूप मे प्रस्तुत होती
है।

पाठक औपन्यासिक प्रोक्ति में निहित उन संकेतो की पहचान करता है, जो उपन्यासकार के द्वारा 'प्रच्छन्न रचनाकार' 'उत्तारक' या 'मैं' प्रतिमा या चरित्र का पुनरंचक स्वर या वैयक्तिक भूमिका के स्तर पर किसी औपन्यासिक प्रोक्ति की वाकोपवाकी संरचना मे प्रतिभागियो के लिए विशदीकृत किये जाते हैं।

लेखकीय और उत्तारकीय स्वरों को पहचानने के लिए 'मैं' प्रतिमा (I-Image) की विविध भूमिकाओ को रेखांकित करने की अपेक्षा होती है। आख्यानक प्रोक्तियों मे यह 'मैं' प्रतिमा उत्तारकीय स्वर और लेखकीय स्वर—दोनों ही भूमिकाओं में सामने आती है।

'मैं' प्रतिमा का पहला प्रकार वह है, जहाँ वह लेखकीय अभिज्ञान से परे उत्तारकीय पहचान के बतौर सामने आती है, जहाँ वह अपना वैयक्तिक इतिवृत्त एक नितांत वैयक्तिक शैली मे उपस्थित करती है। फाउलर ऐसे स्वर को अपराध-स्वीकारी उत्तारक का स्वर मानता है।[1] एक दूसरे प्रकार की 'मैं' प्रतिमा ऐसे कथावाचक को उजागर करती है, जो अपराध स्वीकारी उत्तारक की ही तरह लेखक से स्पष्ट तौर पर अलग होता है, पर यहाँ वह अपने वृत्त पर कम रोशनी डालता हुआ उन घटनाओ की कतार के विषय मे अधिक बताता है, जिसका

1. रोजर फाउलर, 'डिस्कोर्स', लिंग्विस्टिक्स एण्ड द नावेल (लंदन : मेथुइन एण्ड कं॰ 1977, पुनर्मुद्रण, 1979), पृ. 83

...चश्मदीद गवाह रह चुका होता है। एक तीसरे प्रकार की 'मैं' प्रतिमा वहाँ ...प्त होती है, जहाँ वह किसी ऐसे अन्य पुरुष के इतिवृत्त को बताती है, जिससे वह बहुत निकटता-अंतरंगता से परिचित रही हो। इन सभी उतारकीय स्थितियों में प्रच्छन्न लेखक के द्वारा 'मैं' प्रतिमा को व्यंग्यपूर्ण रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। उत्तारक का स्वर यहाँ आत्मप्रवंचक भी हो सकता है अथवा प्रच्छन्न लेखक उसे सीधे ही दबाव डालकर प्रस्तुत कर सकता है। चौथे प्रकार की 'मैं' प्रतिमा वह है, जो प्रच्छन्न लेखक के साथ अत्यंत नाजुक रिश्तेदारी में उपस्थित होती है। यहाँ 'मैं' प्रतिमा वस्तुतः वह 'वक्ता' है, जो काल्पनिक न होकर वास्तविक लेखक होने का दावा करता है।

2.1.2.2.2.3. प्रोक्ति में रचनाकार और चरित्र-सम्बन्ध :

रचना मे रचनाकार प्रोक्ति की गहन संरचना मे वृत्तिकता के द्वारा अपने चरित्र या पात्रों के क्रिया-कलाप, विचार, प्रस्तुति और दूसरी गुणवत्ताओं को नियंत्रित करता है। पर अपने पात्रों की उपस्थिति में वह न तो प्रकट होता है और न गोपन रहता है। वह चाहे तो कठपुतली नचाने वाले उस्ताद (Puppet-Master) के बतौर सामने आ भी सकता है और नहीं भी आ सकता है। उसके पास बहुत-सारे विकल्प होते हैं, जिनके जरिये यह निर्णीत हो पाता है कि 'कितना' और 'कैसे' वह अपने पात्रों की चेतना को मुक्त होने के लिए अनुमत करे। यही यह भी तय होता है कि किस सीमा तक और कैसे वह अपने विचारों से उन्हें प्रेरित और प्रभावित करे। रचना या आख्यानक मे यह सब कुछ भाषिक विकल्पों के जरिये ही सम्पन्न होता है। यहाँ कोई भी रचनाकार के शब्दों के चयन और उसकी वाक्यगत सरचना के जरिये एक-दूसरे के प्रति व्यक्त किये जाने वाले रुख को समझ सकता है।

फाउलर ने रचनाकार के साथ चरित्रो से बन रहे इस सम्बन्ध का 2.1.2.2.3.1. आभ्यंतर दृष्टि और 2.1.2.2.3.2. बाह्य दृष्टि के रूप में रेखांकित किया है।[1]

2.1.2.2.2.3.1. आन्तरिक दृष्टि :

फाउलर के अनुसार आन्तरिक दृष्टि पात्रों की मस्तिष्कीय स्थिति, उनकी प्रतिक्रियाओं और अभिप्रायों मे देखी जाती है। इसे रचनाकार की टिप्पणी अथवा स्वगत, एकालाप चेतना-प्रवाह जैसी तकनीक मे देखा जाता है।

आन्तरिक परिप्रेक्ष्य की परम्परा के भीतर एक लेखक अपनी आख्यानक प्रोक्ति में चरित्रो की वैचारिक बुनावट की छाप प्रस्तुत कर भी म... है

1. रोजर फाउलर, लिंग्विस्टिक्स ऐंड द नावेल (... पुनर्मुद्रण, 1979), पृ० 89-93

नहीं भी कर सकता है। उसका यह रवैया सहानुभूतिपूर्ण भी हो सकता है और आलोचनात्मक भी। चरित्रों की व्यक्ति-शैली को उजागर करने के लिए आंतरिक प्रोक्ति में निर्णय भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

2.1.2.2.2.3.2. बाह्य-दृष्टि :

बाह्य परिदृश्य मे दूसरे लोगों के अनुभव की गोपनीयता सामने आती है। जब रचनाकार एक विधि से दूसरी विधि पर छलांग लगाता है तब बाह्य रूप में पात्र को स्पष्ट करने वाली चीजें ज्यादा उभरती हैं। उत्तारक के बहुतेरे थेण्य भाषिक संकेत चरित्रों की चेतना से बाहर स्थित होते हैं। अनुमानात्मक क्रियाएँ—'प्रतीत होता है', 'मान लो कि', अथवा तथ्यात्मक प्रतिवेदन की जगह निर्वचन को प्रभावित करने वाले क्रिया-विशेषण और योगात्मक निपात—'निश्चय ही', 'शायद', 'तय है', और गोपनीय आंतरिक स्थिति को सुबोध बनाने के लिए ज्ञात तथ्यों को उद्धृत करने वाली तुलना—'जैसे', 'की तरह', 'मानों',—जैसी निश्चयात्मक या अनिश्चात्मक अभिव्यक्तियाँ प्रोक्ति-संदर्भ मे पार्थक्यमूलक शब्द (Words of Estrangemant) कहलाती हैं।

बोरिस उस्पेंस्की के अनुसार इस प्रकार का प्रोक्ति-अभिव्यंजन तब उपस्थित होता है जब उत्तारक चरित्रों की आंतरिक स्थिति को निरूपित करने के लिए किसी बाह्य दृष्टिकोण का अवलम्ब लेता है।[1] ऐसी कोई भी पार्थक्यमूलक प्रोक्ति किसी कारणवश ही चुनी जाती है। वास्तव में यह ऐसी प्रोक्ति होती है, जिसे रचनाकार उत्तारक को प्रदान करता है। 'निष्कपटता' या 'फ़ासले' का अभिनय करने के लिए सौन्दर्यात्मक कारण को निरूपित किया जाता है।

2.1.2.2.2.4. प्रोक्ति-संरचना और व्यक्ति-शैली :

यह युक्तिकता ही है जो प्रोक्ति-संरचना में व्यक्ति-शैली का उद्भावन करती है। व्यक्ति-शैली के रूप में प्रोक्ति किसी वैयक्तिक मानसिकता की विशिष्ट भाषिक अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट करती है। प्रोक्ति में व्यक्तिशैली तब उपस्थित होती है जब किसी चरित्र के मानसिक जीवन को कमोवेश मूलभूत रूप मे विश्लेषित किया जाता है। व्यक्ति-शैली व्यक्ति की मानसिकता के अपेक्षाकृत मूलभूत और अनिश्चित पहलुओं से भी संबंध रखती है। प्रोक्ति के अन्तर्गत यह चेतना विचारों की क्रमबद्धता और संरचना को नाटकीय बना देती है। युक्तिकता का यह पहलू ऐसे विषयों को उपस्थित करता है जिनके प्रति पात्र अपने पूर्वग्रहों,

---

1. बी० ए० उस्पेंस्की, ए पोयटिक्स ऑव कम्पोजीशन, अनुवादक वी० जैवरिन और एस० विटिग (बर्कले और लॉस एंजेल्स : यूनिवर्सिटी ऑव कैलीफोर्निया प्रेस, 1973), पृ० 138

पूर्वअधिकारों, परिप्रेक्ष्यों और मूल्यों को प्रतिबंधित करता है। ये विषय पक्के तौर पर चरित्रों के सांसारिक दृष्टिकोण की तरफदारी करते हैं, पर इनके प्रति-चरित्र अनभिज्ञ होते हैं। इस दृष्टि से विभिन्न प्रकार की प्रोक्ति-संरचना विभिन्न प्रकार की तकनीक की अपेक्षा रखती है। यहाँ वृत्तिकता रचनाकार या उसके द्वारा सूचित पात्र की व्यक्ति-शैली को समझने के लिए प्रोक्ति में उपस्थित होने वाली शब्दमाला या वाक्य-रचना पर आधारित होती है। यहाँ वृत्तिकता भद्रता, स्पष्टता, मानसिक नमनीयता, निष्ठुरता, विचारात्मक दृढ़ता, हठशीलता, बौद्धिकता जैसी अनेक गुणधर्मिताओं के द्वारा व्यक्ति-शैली को उजागर करती हैं। हैलीडे ने विलियम गोल्डिंग के 'द इनहेरिटर' का विश्लेषण करते हुए आदिम मनुष्य की संज्ञानात्मक सीमाओं की भाषिक सम्प्रेषणीयता को रेखांकित किया है। हैलीडे के अनुसार वहाँ जो क्रिया-व्यापार का अनुक्रम प्रत्यक्ष होता है वह अपने इर्द-गिर्द के संसार को नियंत्रित करने के सिलसिले में मनुष्य की दुर्बल शक्ति-क्षमता को साभिप्रायता प्रदान करता है।

कर्तृवाचकता (Agency) और सजीवता (Animacy) ऐसी वृत्तिपरक भाषिक संरचना के मूलभूत पहलू हैं, जो व्यक्तिशैली को साभिप्राय रूप में निर्धारित करते हैं। वे दोनों शैलिकीय संघटना के वैविध्य की विस्तृत श्रेणी में उपस्थित होते हैं। फाउलर प्रोक्ति के अध्ययन-क्रम में व्यक्तिशैली के संदर्भ में इनकी परीक्षा की संस्तुति प्रदान करता है।

प्रोक्ति की गहन संरचना में यह वृत्तिकता का ही पहलू है, जहाँ एक प्रमुख परम्परा चरित्र को परिदृश्य से इस तरह जोड़ देती है जिसमें मनोवैज्ञानिक फंतासियाँ क्रीड़ा करती पाई जाती हैं। ये परिदृश्य रहस्यमय, विलक्षण तथा प्रतिकूल होते हैं। ये परिदृश्य कमोबेश लोगों को प्रभावित करने की शक्ति द्वारा प्राणीकृत होते हैं। किसी भी प्रोक्ति की संरचना में मैदान के 'अदृश्य हो जाने' या सड़क के 'रुक जाने' की अभिव्यक्तियाँ अविश्वसनीय लगती हैं। कहना न होगा कि ऐसी अभिव्यक्तियां आसानी से अन्य विकल्पों के द्वारा भी व्यक्त की जा सकती हैं। पर जब प्रोक्ति में ऐसी अभिव्यक्तियां उपस्थित हो पड़ती हैं तब ऐसी अभिव्यक्तियों में मैदान की 'गतिशीलता' या सड़क की 'स्थिरता' का कहा जाना उतना अभीष्ट नहीं होता जितना अभीष्ट लेखक या वक्ता के दृष्टिकोण के परिवर्तन में नजर आता है। फाउलर ने कई कथाकारों की प्रोक्तियों से अपने इस मंतव्य को समर्थित एवं सम्पुष्ट किया है। व्यक्तिशैली की दृष्टि से प्रोक्ति में 'सक्रिय-क्रिया' के लिए 'संज्ञा का प्रतिस्थापन', 'कर्तृवाचक प्रकार्य का दमन', 'विशेषणों का नामिकीकरण', 'स्थितिमूलक विधेयों का

---

1. रोजर फाउलर 'डिस्कोर्स', लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड द नॉवेल (लण्डन : मेथुइन, 1977, पुनर्मुद्रण, 1979), पृ. 106

नामिकीकरण' आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिनसे बन रही वृत्तिकता व्यक्तिशैली को उजागर करती है।

2.1.2.2.2.5. आख्यानक प्रोक्ति में सामाजिक संरचना : विकसित बनाम प्रतिबंधित संकेत-पद्धति (Codes) :

वृत्तिकता से द्योतित होने वाले इस पहलू के लिए समाजशास्त्री बेसिल बर्न स्टीन (*Basil Burn Stein*) द्वारा प्रतिबंधित बनाम विकसित संकेत-पद्धति की धारणा विचारणीय है। इस धारणा के अनुरूप एक भाषा-भाषी समुदाय का वक्ता जिस सामाजिक वर्ग में जन्म पाता है, उस सामाजिक वर्ग की छाप अपने परिवार की संरचना पर होने के कारण वह उस प्रभाववश उसी विशेष प्रकार की भाषा उपलब्ध करता है। इस सिद्धांत की मान्यता के अनुसार कामकाजी वर्ग के परिवार के बच्चे को भाषा का प्रतिबंधित प्रकार ही सुलभ हो पाता है, जबकि इसके विपरीत मध्य अथवा उच्च वर्गीय बच्चों को भाषा का कहीं विकसित संदर्भ प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि इसके मूल में समाजशास्त्रीय कारण सक्रिय होते हैं। ऐसा देखा जाता है कि विकसित संकेत पद्धति को अधिकृत करने वाले प्रायः अधिक गतिशील होते हैं। वे अपनी तात्कालिक सम्प्रेषणिक स्थिति के प्रति कम बँधे होते हैं तथा सामान्यीकरण करने के योग्य होते हैं। वे भाषा को वस्तु से जोड़ने के संदर्भ में प्रतिबंधित संकेत-पद्धति वालों की अपेक्षा अधिक प्रतीक-समर्थ और व्यंग्य-क्षम होते हैं। इसके प्रतिकूल प्रतिबंधित संकेत-पद्धति का व्यवहार करने वाले तात्कालिक स्थिति में प्रच्छन्न अर्थों के प्रति सीमित होते हैं। उनमें विकसित संकेत-पद्धति का व्यवहार करने वालों को सुलभ अर्थ के विशेषीकरण का और संकेतपरक संरचनाओं के अवबोध का अभाव होता है। आख्यानक की प्रोक्तियों में उक्त सामाजिक वर्ग के अनुरूप प्रतिबंधित और विकसित भाषिक संकेत-पद्धति को गहन संरचना की वृत्तिकता ही स्पष्ट करती है।

2.1.2.3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के आधार पर प्रोक्ति की गहन-संरचना :

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने प्रोक्ति की गहन संरचना पर विचार करते हुए फाउलर की तरह ही प्रतिज्ञप्ति और वृत्तिकता को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार, किसी भी वाक्य को गठन-सम्बंधी एक वाह्य-संरचना होती है, जो अर्थ-संबंधी आभ्यन्तर संरचना के रूपांतरण का परिणाम होती है। आभ्यन्तर संरचना के मूल में एक ओर वृत्तिवाचक तत्त्व होता है और दूसरी ओर प्रतिज्ञप्ति वाचक तत्त्व। प्रतिज्ञप्तिवाचक तत्त्व अपने मूल में विधेयपरक संघटक और विभिन्न संज्ञा-संघटक के संबंधों का परिणाम होता है।'[1] × × 'वृत्तिवाचक तत्त्व वक्ता की

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ. 69

पूर्वअधिकारों, परिप्रेक्ष्यों और मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। ये विषय पक्के तौर पर चरित्रों के सांसारिक दृष्टिकोण की तरफदारी करते हैं, पर इनके प्रति-चरित्र अनभिज्ञ होते हैं। इस दृष्टि से विभिन्न प्रकार की प्रोक्ति-संरचना विभिन्न प्रकार की तकनीक की अपेक्षा रखती है। यहाँ वृत्तिकता रचनाकार या उसके द्वारा सूचित पात्र की व्यक्ति-शैली को समझने के लिए प्रोक्ति में उपस्थित होने वाली शब्दमाला या वाक्य-रचना पर आधारित होती है। यहाँ वृत्तिकता भद्रता, स्पष्टता, मानसिक नमनीयता, निष्ठुरता, विचारात्मक दृढ़ता, हठशीलता, बौद्धिकता जैसी अनेक गुणधर्मिताओं के द्वारा व्यक्ति-शैली को उजागर करती हैं। हैलीडे ने विलियम गोल्डिंग के 'द इनहेरिटर' का विश्लेषण करते हुए आदिम मनुष्य की संज्ञानात्मक सीमाओं की भाषिक सम्प्रेषणीयता को रेखांकित किया है। हैलीडे के अनुसार यहाँ जो क्रिया-व्यापार का अनुक्रम प्रस्तुत होता है वह अपने इर्द-गिर्द के संसार को नियंत्रित करने के सिलसिले में मनुष्य की दुर्बल शक्ति-क्षमता को साभिप्रायता प्रदान करता है।

कर्तृवाचकता (Agency) और सजीवता (Animacy) ऐसी वृत्तिपरक भाषिक संरचना के मूलभूत पहलू हैं, जो व्यक्तिशैली को साभिप्राय रूप में निर्धारित करते हैं। ये दोनों शैलिकीय संघटना के वैविध्य की विस्तृत श्रेणी में उपस्थित होते हैं। फाउलर प्रोक्ति के अध्ययन-क्रम में व्यक्तिशैली के संदर्भ में इनकी परीक्षा की संस्तुति प्रदान करता है।

प्रोक्ति की गहन संरचना में यह वृत्तिकता का ही पहलू है, जहाँ एक प्रमुख परम्परा चरित्र को परिदृश्य से इस तरह जोड़ देती है जिसमें मनोवैज्ञानिक फंतासियाँ क्रीड़ा करती पाई जाती हैं। ये परिदृश्य रहस्यमय, विलक्षण तथा प्रतिकूल होते हैं। ये परिदृश्य कमोबेश लोगों को प्रभावित करने की शक्ति द्वारा प्राणीकृत होते हैं। किसी भी प्रोक्ति की संरचना में मैदान के 'अदृश्य हो जाने' या सड़क के 'रुक जाने' की अभिव्यक्तियाँ अविश्वसनीय लगती हैं। कहना न होगा कि ऐसी अभिव्यक्तियाँ आसानी से अन्य विकल्पों के द्वारा भी व्यक्त की जा सकती हैं। पर जब प्रोक्ति में ऐसी अभिव्यक्तियाँ उपस्थित हो पड़ती हैं तब ऐसी अभिव्यक्तियों में मैदान की 'गतिशीलता' या सड़क की 'स्थिरता' का कहा जाना उतना अभीष्ट नहीं होता जितना अभीष्ट लेखक या वक्ता के दृष्टिकोण के परिवर्तन में नजर आता है। फाउलर ने कई कथाकारों की प्रोक्तियों से अपने इस मंतव्य को समर्थित एवं सम्पुष्ट किया है। व्यक्तिशैली की दृष्टि से प्रोक्ति में 'सक्रिय-क्रिया' के लिए 'संज्ञा का प्रतिस्थापन', 'कर्तृवाचक प्रकार्य का दमन', 'विशेषणों का नामिकीकरण', 'स्थितिमूलक विधेयों का

---

1. रोजर फाउलर 'डिस्कोर्स', लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड द नॉवेल (लन्दन : मेथुइन, 1977. पुनर्मुद्रण, 1979), पृ. 106

नामिकीकरण' आदि ऐसे तत्व हैं, जिनसे बन रही वृत्तिकता व्यक्तिशैली को उजागर करती है।

2.1.2.2.2.5. आख्यानक प्रोक्ति में सामाजिक संरचना : विकसित बनाम प्रतिबंधित संकेत-पद्धति (Codes) :

वृत्तिकता से द्योतित होने वाले इस पहलू के लिए समाजशास्त्री बेसिल बर्न स्टीन (Basil Burn Stei.i) द्वारा प्रतिबंधित बनाम विकसित संकेत-पद्धति की धारणा विचारणीय है। इस धारणा के अनुरूप एक भाषा-भाषी समुदाय का वक्ता जिस सामाजिक वर्ग में जन्म पाता है, उस सामाजिक वर्ग की छाप अपने परिवार की संरचना पर होने के कारण वह उस प्रभाववश उसी विशेष प्रकार की भाषा उपलब्ध करता है। इस सिद्धांत की मान्यता के अनुसार कामकाजी वर्ग के परिवार के बच्चे को भाषा का प्रतिबंधित प्रकार ही सुलभ हो पाता है, जबकि इसके विपरीत मध्य अथवा उच्च वर्गीय बच्चों को भाषा का वही विकसित संदर्भ प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि इसके मूल में समाजशास्त्रीय कारण सक्रिय होते हैं। ऐसा देखा जाता है कि विकसित संकेत पद्धति को अधिकृत करने वाले प्रायः अधिक गतिशील होते हैं। वे अपनी तात्कालिक साम्प्रेषणिक स्थिति के प्रति कम बँधे होते हैं तथा सामान्यीकरण करने के योग्य होते हैं। वे भाषा को वस्तु से जोड़ने के संदर्भ में प्रतिबधित संकेत-पद्धति वालों की अपेक्षा अधिक प्रतीक-समर्थ और व्यंग्य-क्षम होते हैं। इसके प्रतिकूल प्रतिबंधित संकेत-पद्धति का व्यवहार करने वाले तात्कालिक स्थिति में प्रच्छन्न अर्थों के प्रति सीमित होते हैं। उनमें विकसित संकेत-पद्धति का व्यवहार करने वालों को सुलभ अर्थ के विशेषीकरण का और संकेतपरक संरचनाओं के अवबोध का अभाव होता है। आख्यानक की प्रोक्तियों में उक्त सामाजिक वर्ग के अनुरूप प्रतिबधित और विकसित भाषिक संकेत-पद्धति को गहन संरचना की वृत्तिकता ही स्पष्ट करती है।

2.1.2.3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के आधार पर प्रोक्ति की गहन-संरचना :

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने प्रोक्ति की गहन संरचना पर विचार करते हुए फाउलर की तरह ही प्रतिज्ञप्ति और वृत्तिकता को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार, किसी भी वाक्य की गठन-सम्बंधी एक बाह्य-संरचना होती है, जो अर्थ-संबंधी आभ्यन्तर संरचना के रूपांतरण का परिणाम होती है। आभ्यन्तर संरचना के मूल में एक ओर वृत्तिवाचक तत्त्व होता है और दूसरी ओर प्रतिज्ञप्ति वाचक तत्त्व। प्रतिज्ञप्तिवाचक तत्त्व अपने मूल में विधेयपरक संघटक और विभिन्न संज्ञा-संघटक के संबंधों का परिणाम होता है।'[1] × × 'वृत्तिवाचक तत्त्व वक्ता की

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ. 69

वृत्तियों के संवाहक होते हैं। यथा, वह प्रश्न पूछ रहा है, किसी को आज्ञा दे रहा है या बलार्थक भाव से अपनी बात कह रहा है। प्रतिज्ञप्तिवाचक तत्त्व कथ्य का वह विषय-पक्ष है जो मूल में विधेय परक (क्रिया-प्रकरण) और विभिन्न संज्ञा-सघटक (कारक प्रकरण) के सम्बंधों की प्रकृति पर आधारित होता है।'[1]

पर श्रीवास्तव ने प्रतिज्ञप्ति और वृत्तिकता का अलग-अलग विस्तृत विवेचन प्रस्तुत नहीं कर केवल वृत्तिवाचकता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने वृत्तिवाचकता के अन्तर्गत 2.1.2.3.1. कथानक के नियमों और 2.1.2.3.2. दृष्टि-शैली पर अच्छी तरह विचार किया है।

2.1.2.3.1. कथानक के नियम :

श्रीवास्तव ने प्रोक्ति की गहन संरचनात्मक वृत्तिकता के अन्तर्गत कथानक की समझ के लिए वेस्लोवस्की के अभिप्राय (Motif) की अवधारणा को स्पष्ट किया है। उनके शब्दों में 'कहानी को कथानक मे रचनांतरित करने वाले नियमों का प्रेरक तत्त्व वृत्तिवाचकता होती है। यह वृत्तिवाचकता ही कथानक के मोटिफ (Motif) को जन्म देती है।[2] अभिप्राय जहाँ वृत्तिवाचक होता है, वहाँ पात्र और उनके कर्म-विधान प्रतिज्ञप्ति-वाचक होते हैं। वस्तुतः वृत्तिवाचकता से ही कथानक का जन्म होता है। 'अभिप्राय' की यह सक्रियता चार रूपों मे उभर कर सामने आती हैं, जिन्हें क्रमशः 2.1.2.3.1.1. विधेय-विधान का नियम 2.1.2.3.1.2. घटनाओं की पुनरावृत्ति का नियम 2.1.2.3.1.3. संकेतन-सार्थकता का नियम और 2 1.2.3.1.4. व्यतिरेकी पक्षपदो का नियम कहते हैं।

2.1.2.3.1.1 विधेय-विधान का नियम :

जब किसी कथात्मक प्रोक्ति मे किसी व्यक्ति की क्रूरता को दर्शाना अभीष्ट होता है तब इसके लिए सिर्फ भाषिक अभिव्यक्ति प्रभुत नहीं हो पाती, अपितु इस अभिप्राय के लिए यथापेक्षी-घटना का विन्यास करना पड़ता है। इसी के आधार पर उस पात्र की क्रूरता स्पष्ट तौर पर निरूपित हो पाती है। कथात्मक प्रोक्ति में घटना के इस नियोजनात्मक क्रम को 'विधेय-विधान' का नियम कहा जाता है। कहना न होगा कि कथात्मक प्रोक्ति में प्रोक्तियाँ अनिवार्य तौर पर इस नियम के अन्तर्गत आती हैं।

---

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ० 68-69
2. वही, पृ० 73

2.1.2.3.1.2. घटनाओं की पुनरावृत्ति का नियम :

कथात्मक प्रोक्ति में अभिप्राय केन्द्रक बनकर सामने आता है। ऐसी स्थिति में घटनाओं को कई रूपों मे घटित होता दिखाया जाता है। यद्यपि बाह्य तौर पर इनमें रूपाकार की भिन्नता होती है, पर इनकी मूल वृत्तिकता में एक ही अभिप्राय क्रियाशील होता है। इसे ही घटनाओं की पुनरावृत्ति का नियम कहते हैं। एक रक्तसम्बंध को लेकर भिन्न-भिन्न घटनाओं में एक ही अभिप्राय का आवर्तन इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

2.1.2.3.1.3. संकेतन-सार्थकता का नियम :

कथानक प्रायः रचना के संकेतन-विधान से युक्त होता है। यह दो रूपों में क्रियाशील होता है। इसका एक रूप भाषा के व्यावहारिक पक्ष से इसके जुड़ने का है, और दूसरा रूप इसके मिथक-पक्ष से जुड़ने का है। इनमे व्यावहारिक पक्ष वस्तु का बाहरी पक्ष होता और मिथक पक्ष उसकी आन्तरिक गुणवत्ता का पक्ष। कथानक की प्रोक्ति मे ये दोनों पक्ष अलग-अलग क्रियाशील रहते हैं। वास्तविकता यह है कि इनके तनाव से ही कृति को सार्थकता प्राप्त होती है। अतः कहानी में प्रोक्तियों द्वारा संकेतन-सार्थकता के नियम को दर्शाने की संभावना विद्यमान रहती है।

2.1.2.3.1.4. व्यतिरेकी पक्ष-पदों का नियम :

व्यतिरेकी पक्षपदों का नियम पात्र या घटना के संदर्भ में क्रियाशील होता है। यहाँ कथानक या क्रिया की सार्थकता व्यतिरेक के द्वारा स्पष्ट होती है। यहाँ पात्र अर्थिम के रूप में सामने आता है, जो अर्थिम नहीं होकर सार्थक अर्थ-पदों का समुच्चय होता है। व्यतिरेक की संकल्पना पक्षपद का आधार बनती है, जिसे पुल्लिंग-स्त्रीलिंग, पाप-पुण्य, दिन-रात के बीच की विरोधिता मे देखा जा सकता है। वस्तुतः यहां प्रोक्ति विरोधी समातरता के स्तर पर क्रियाशील होती है।

2.1.2.3.2. प्रोक्ति और दृष्टि-शैली :

फाउलर की तरह ही श्रीवास्तव की मान्यता है कि 'हर कहानी के कथन के बीच से उसके कथाकार की आवाज सुनी और पहचानी जा सकती है। प्रोक्ति के रूप में कथा-साहित्य को देखते समय यह जरूरी हो जाता है कि हम देखें कि भौतिक घटना या घटनाक्रम को भाषिक रूप मे बांधते समय कहानीकार स्वयं को कहाँ तक उसमे बांधता है—वह कहाँ तक वक्ता के रूप में अपने विश्वास, दृष्टिकोण और मूल्य आदि को सम्प्रेष्य बनाता है और कहाँ तक और किस

प्रकार अपने और श्रोता (पाठक) के बीच सम्बंध-स्थापन करने की सम्भावना उसमें भरता है।[1]

अतः श्रीवास्तव ने यहाँ गहन संरचनात्मक वृत्तिकता से दृष्टि-शैली को जोड़ते हुए उसके 2.1.2.3.2.1. दृश्य अक्ष और 2.1.2.3.2.2. दृष्टि-अक्ष जैसे दो भेदों पर प्रकाश डाला है।

2.1.2.3.2.1. दृश्य अक्ष :

किसी भी कथात्मक प्रोक्ति में जो घटनाएं अभिव्यक्त होती हैं उनके अभिविन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष समय या स्थान की दृष्टि से घटना को देखने का है। इसी से घटना की दृश्यमानता उभरती है। यहाँ घटना को दृश्य रूप में प्रस्तुत करने का काल और स्थल-सम्बंधी आधार सामने आता है। भाषिक अभिव्यक्ति पाकर काल और स्थान का स्वरूप विशिष्ट हो जाता है। तब ये काल-बोध और स्थानबोध बन जाते हैं। लेखक यदि किसी ऐतिहासिक रचना में भूतकाल का प्रयोग करता है तो वहाँ कालगत दूरी सामने आती है। उसी तरह यदि वर्तमान कालिकता का प्रयोग किया जाता है तो वहाँ एक नैकट्य की अनुभूति प्राप्त होती है। काल की अतीतता को दर्शाने के लिए क्रिया के अतिरिक्त संज्ञापदों से भी काम लिया जाता है। इसी तरह कोई भी घटना किसी विशेष स्थान पर ही घटती है। प्रोक्ति-विशेष की वृत्तिकता में इस विशेष स्थानिकता का भी महत्व होता है। आंचलिक उपन्यासों में घटने वाली घटना को गहन संरचना की वृत्तिकता ही दृश्य अक्ष की स्थानिकता के जरिये यह स्थानीय रंग प्रदान करती है, जिससे आंचलिकता का स्वरूप स्पष्ट एवं पुष्ट होता है।

2.1.2.3.2.2. दृष्टि अक्ष :

दृष्टि-अक्ष वस्तुतः प्रोक्ति के भीतर से सर्जक की निकलने वाली अभिवृत्तिमूलकता का अक्ष होता है। यहाँ विषयवस्तु के प्रति भाषा की गहन संरचना के द्वारा सर्जक के दृष्टिकोण को रेखांकित किया जाता है। डॉ० श्रीवास्तव के शब्दों में 'बोलने-लिखने के समय जिन शब्दों का हम चयन करते हैं, जिस संरचना को अपनाते हैं और जिन व्याकरणिक शब्दों द्वारा वाक्यों को एक दूसरे से जोड़ते हैं वे सभी सार्थक होते हैं और उनकी सार्थकता की प्रकृति व्यक्तिगत न होकर सामाजिक और संस्थागत होती है। भाषा की इस सामाजिक और संस्थागत प्रकृति से जूझते हुए ही साहित्यकार अपने कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाता है। इस जूझने की प्रक्रिया के साथ ही वह काव्य-वस्तु का

---

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ. 86-87

निर्माण करता है। इसलिए स्वाभाविक है कि भाषा में बंधकर कथ्य एक खास कोण के साथ उभरे और काव्य-वस्तु एक विशेष दृष्टि का परिचय दे।'[1]

शब्द-चयन के क्षेत्र में 'सुमन' और 'कुसम' के प्रयोग में या 'अबला' या 'रमणी' के प्रयोग मे 'सुमन' और 'अबला' के चयन में सर्जक के विशेष दृष्टि-कोण का परिचय मिलता है। इसी तरह वृत्तिकता कर्मवाच्य और कर्तृवाच्य के अन्तर से अभीष्ट दृष्टि को उन्मीलित करती है। डॉ० श्रीवास्तव ने दृष्टि के इस अंतर को निम्नलिखित दो वाक्यों के आधार पर स्पष्ट किया है—(1) दूसरे के लिए बनाये जाल में मोहन अपने को फंसाता चला गया, (2) दूसरे के लिए बनाये जाल में मोहन स्वयं फंसता चला गया।

यहाँ पहले वाक्य में फंसने का दायित्व मोहन स्वयं वहन कर रहा है, किंतु दूसरे वाक्य में इसका कारण मोहन नहीं रहता, बल्कि परिस्थिति हो जाती है। इसीलिए श्रीवास्तव के अनुसार, 'वक्ता जब इन दो वाक्यो में किसी एक वाक्य का चुनाव करता है तब ज्ञात-अज्ञात रूप से उसके मन की वृत्तियां उसके चुनाव के कारण पर प्रकाश डालती हैं'।[2]

2.2, निष्कर्ष :

इस प्रकार प्रोक्ति की बाह्य संरचना के अन्तर्गत क्रमशः मिलिक, लांगेकर लेविनशन, हैलीडे और एंमिवस्ट तथा गहन संरचना के अन्तर्गत वान डिजक, रोजर फ़ाउलर और श्रीवास्तव द्वारा निर्दिष्ट अवयवों की जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद वह भूमिका तैयार हो जाती है, जिसके आधार पर किसी भी प्रदत्त पाठ। प्रोक्ति की संरचना का विश्लेषण किया जा सकता है।

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ. 90
2. वही

प्रोक्ति : शैलीपरक अभिलक्षण

3.0. प्रोक्ति : शैलीपरक अभिलक्षण

प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षणों को निर्दिष्ट करने के संदर्भ में पहला विचारणीय तथ्य यह है कि क्या प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षण भाषा की अन्य इकाइयों के शैलीपरक अभिलक्षणों से अलग होते हैं अथवा अन्य इकाइयों के अभिलक्षणों के समान होते हैं। यहां ध्यान देने योग्य है कि शैलीपरक अभिलक्षण वास्तव में भाषा का होता है और भाषा अपनी सभी इकाइयों के साथ ही पूर्ण होती है तथा सभी भाषाई स्तरों पर क्रियाशील रहती है। पर भाषा के कुछ शैलीपरक अभिलक्षण अलग-अलग प्रतिमान के रूप में सभी भाषिक इकाइयों और स्तरों पर एकवत् अपनी क्रियाशीलता नहीं दिखा पाते हैं। किसी-किसी अभिलक्षण के ऐसे अपवाद होते हैं। जैसे —'चयन-संयोजन' के अभिलक्षण प्रोक्ति स्तर पर क्रियाशील नहीं होते हैं, क्योंकि वाक्य-स्तर का संयोजन ही प्रोक्ति के रूप में उपस्थित हो पड़ता है।[1] अतः प्रोक्ति के संदर्भ में शैलीपरक अभिलक्षण का निरूपण एवं विवेचन निरपवाद रूप से ही करना समीचीन है।

3.1. सामान्य प्रोक्ति बनाम विशिष्ट प्रोक्ति :

प्रोक्ति के संदर्भ में शैली का अभिलक्षण सामान्य प्रोक्ति की पृष्ठभूमि में विशिष्ट प्रोक्ति को सामने उपस्थित करता है। सर्जनात्मक भाषा के संदर्भ में इस विशिष्ट प्रोक्ति का ही महत्त्व होता है। यह विशिष्टता वहां उपस्थित होती है, जहां भाषा का सौंदर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। शैली इसी विशिष्ट भाषिक प्रयोग में होती है। वस्तुतः यह प्रोक्ति का शैलीपरक अभिलक्षण ही है, जो प्रोक्ति को सामान्य से विशिष्ट बना देता है।

---

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', 'चयन-संयोजन प्रतिमान,' शैलीविज्ञान : प्रकार और प्रतिमान (चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1977), पृ० 150

3.2. अभिलक्षण (Features) :

अभिलक्षण उस गुण-धर्म को कहते हैं जिससे वस्तु-विशेष की विधेयात्मक एवं व्यवच्छेदक, स्वरूपगत विशेषता का द्योतन हो। जब 'अभिलक्षण' का व्यवहार 'शैली' के संदर्भ में किया जाता है तब इसका मंतव्य शैली को रेखांकित करने वाली उसकी स्वरूपगत एवं व्यवच्छेदक विशेषताओं के निरूपण से लिया जाता है।

3.3. शैली (Style) :

शैली की अनेक परिभाषाएं की गयी हैं। आसगुड एवं वारबर्ग[1] ने इसे 'चयन' के रूप में देखा है, तो हैरिस[2] ने 'वितरण' या संयोजन के रूप मे, रोमन याकोब्सन[3] ने इसे 'चयन-संयोजन' के रूप मे रेखांकित किया है तो लिविन,[4] गेरो[5] आदि ने 'विचलन' के रूप मे। विम्सेट और वर्ड्सले ने इसे अर्थ की साभिप्रायता के रूप में रेखांकित किया है,[6] तो याकोब्सन[7] ने 'समांतरता' के रूप में निर्दिष्ट किया है। कृष्णकुमार शर्मा ने इसे सामूहिक विशेपताओ के समुच्चय

---

1. (क) चार्ल्स ई. आसगुड, 'सम इफेक्ट्स अव मोटिवेशन ऑन स्टाइल अव इनकोडिंग', स्टाइल इन लैंग्वेज, सम्पा. टी० ए० सिबियोक (न्यूयार्क : एम० आइ० टी० प्रेस, 1960), पृ० 293
   (ख) जे० वारबर्ग, 'सम आस्पेक्ट्स अव स्टाइल', द टीचिंग अव इंग्लिश, विवर्क ओर स्मिथ (लंडन : 1959), पृ. 50
2. जेड. हैरिस, स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स (शिकागो : 1960), पृ. 10-11
3. रोमन याकोब्सन, 'लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड पोयटिक्स', स्टाइल इन लैंग्वेज, सम्पा. टी० ए० सिबियोक (कैम्ब्रिज : मास : एम. आई. टी० प्रेस, 1960), पृ. 348
4. एस. आर. लिविन, उद्धृत, 'एडिटर्स इंट्रोडक्शन' लिटरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम, सम्पा. सेमूर चैटमैन (लंडन : ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, 1977), पृ. 13
5. पी. गेरो. उद्धृत, तोदोरोव, 'द प्लेस अव स्टाइल इन द स्टक्चर अव द टेक्स्ट', लिटरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम (लंडन । ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, 1971), पृ. 130
6. विम्सेट और वर्ड्सले, उद्धृत, लिटरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम (लंडन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), पृ० 12
7. रोमन याकोब्सन, लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड पोयटिक्स' स्टाइल इन लैंग्वेज, सम्पा. टी० ए० सिबियोक (कैम्ब्रिज, मास : एम. आइ. टी. प्रेस, 1960), पृ० 348

के रूप में और भाषातात्विक इकाइयों के अन्तःसम्बंध के रूप में निर्दिष्ट किया है।[1] ह.० शर्मा[2] ने इसे व्याकरण की सभी संभावनाओं के उपयोग के बतौर और सांदर्भिक सम्भावनाओं की समष्टि के बतौर निरूपित किया है। एंक्विस्ट[3] और कृष्णकुमार शर्मा[4] ने इसे शैलीचिह्नक के रूप में रेखांकित किया है तो डॉ० शीतांशु.[5] ने इसे मुकारोवस्की की 'अग्रप्रस्तुति' के रूप में।

इस प्रकार प्रथम दृष्टि में 'शैली' एक ऐसे विवादास्पद शब्द के रूप में उपस्थित होती है, जिसका अर्थ-निरूपण और अभिप्रायांकन कई दृष्टियों से किया जाता है। यह अपनी अर्थवत्ता में जितना व्यापक शब्द है उतना ही नमनीय भी। पर भाषा-साहित्य के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि शैली विशिष्ट सौंदर्यात्मक प्रकार्यों को उपस्थित करती है।

3. 4. शैलीपरक अभिलक्षण :

अब तक शैलीविदों द्वारा शैली पर किये गये विचार के आधार पर निम्नांकित शैलीपरक अभिलक्षण स्पष्ट होते हैं।

3.4.1 शैलीचिह्नक (Style Marker) वर्ग, और
3.4.2. अग्र-स्तुति (Foregrounding) वर्ग।

3.4.1. शैलीचिह्नक (Style Merker) वर्ग :

जब शैलीपरक अभिलक्षण को विशेषतः सीमित या केन्द्रित करने की अपेक्षा व्यापक तौर पर मुक्त छोड़ दिया जाता है और किसी भी संदर्भबद्ध भाषिक एकक को उसकी पहचान के बतौर रेखांकित किया जाता है तब शैलीपरक अभिलक्षण का-'शैली चिह्नक' वर्ग उपस्थित होता है।

---

1. कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974), पृ० 39
2. कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकानश, 1974), पृ० 48-49
3. निल्स एरिक एंक्विस्ट, 'ऑन डिफाइनिंग स्टाइल' लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड स्टाइल, जॉन स्पेंसर (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 35-36
4. कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974), पृ० 51
5. पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेयण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 30

3.4.1.1. शैलीचिह्नक अभिलक्षण और इसके प्रस्तोता :

'शैलीचिह्नक' मूलतः अंग्रेजी 'स्टाइल मार्कर' का हिन्दी रूपांतरण है। इस अवधारणा के प्रस्तोता स्वीडेन के शैलीवैज्ञानिक निल्स एरिक एंक्विस्ट हैं। इन्होंने अपने निबन्ध—'आन डिफाइनिंग स्टाइल' (On Defining Style) में इसे प्रस्तावित किया है।[1] हिन्दी में डा० कृष्ण कुमार शर्मा ने एंक्विस्ट की इस अवधारणा का विवेचन अपनी 'शैलीविज्ञान की रूपरेखा' पुस्तक में किया है। पर उन्होंने भी एंक्विस्ट की तरह शैलीचिह्नक के स्पष्ट अवयवों का निर्धारण नहीं कर उसे अस्पष्ट व्यापकता में छोड़ दिया है। जब यह कहा जाता है कि चाहे अलंकार हो या व्याकरणिक तत्व या ऐसा कोई भी भाषिक एकक जो संदर्भबद्ध होने पर शैलीचिह्नक बन जाता है तब प्रत्येक भाषिक स्तर पर भाषावैज्ञानिक अवयव के बतौर उसे सुनिश्चित नहीं किया जाता। शैलीचिह्नक के अभिलक्षण की इस दिशा में सुस्पष्टता की अपेक्षा है।

3.4.1.2. शैलीचिह्नक-अभिलक्षण : स्वरूप-स्पष्टीकरण :

निल्स एरिक एंक्विस्ट के अनुसार[1] :—

3.4.1.2.1 शैली-चयन वस्तुतः शैलीचिह्नक होता है।

3.4.1.2.2. शैली-चिह्नक सदर्भबद्ध होते हैं।

3.4.1.2.3. शैली-चिह्नक शैली के रूप में चिह्नित होते हैं।

3.4.1.2.4. कई बार विभाषा के प्रयोग द्वारा नये शैलीचिह्नकों का निर्माण होता है।

3.4.1.2.5. शैली-चिह्नकों का प्रयोग ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ—सभी स्तरों पर हो सकता है।

3.4.1.2.6. जो तत्त्व शैलिकीय दृष्टि से प्रतिबद्ध होते हैं वे शैलीचिह्नक कहलाते हैं। इसके विपरीत शैलिकीय दृष्टि से निस्संग या तटस्थ भाषिक तत्त्व, शैलीचिह्नक नहीं होते। उदाहरणार्थ :—'ऐज एवरीबाडी नोज अर्थ इज फ्लैट' बीसवीं शताब्दी में हास्य-संदर्भ की उक्ति है। वैज्ञानिक संदर्भ में इसका प्रयोग नहीं होता। अतः अगर इसका कोई महत्त्व है तो वह केवल शैलीपरक है।

---

1. निल्स एरिक एंक्विस्ट, 'आन डिफाइनिंग स्टाइल' लिंग्विस्टिक्स, ऐण्ड स्टाइल, सम्पा. ग्रेगरी ऐण्ड स्पेन्सर (लंडन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 34

शैलीचिह्नक सन्दर्भबद्ध भाषिक एकक होते हैं। यहाँ भाषिक एकक से तात्पर्य भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ जैसे किसी भी स्तर के ऐसे एकक-विशेष से है जो सन्दर्भबद्ध हो। प्राय: किसी भी कृति में भाषिक एककों की प्रस्तुति दो प्रकार की होती है :—

(1) सन्दर्भबद्ध प्रस्तुति
(2) सन्दर्भ-सामान्य प्रस्तुति

शैलीचिह्नक सन्दर्भबद्ध प्रस्तुति से संबंध रखता है। सन्दर्भबद्धता शैलीचिह्नक को साभिप्रायता देती है, जबकि सन्दर्भ-सामान्य प्रस्तुति शैलीचिह्नक को अर्थ देती है। साभिप्रायता और अर्थ में अन्तर होता है। साभिप्रायता गहन संरचना से जुड़ी होती है।

निल्स एरिक एंक्विस्ट ने शैलीचिह्नक को परिभाषित करते हुए लिखा है—संदर्भ के एक ही वर्ग में अधिक अथवा अल्प-प्रयुक्त भाषिक एकक शैली-चिह्नक कहलाते हैं।[1]

यहाँ अधिक प्रयुक्त होने से आवर्त्तन का तथा अल्प प्रयुक्त होने से विरल का आशय ग्रहण होता है। आवर्त्तन प्रतिपाद्य शब्द (Theme) को और विरलता उन्मीलक (Rarity) शब्द को जन्म देती है। हिन्दी में कृष्णकुमार शर्मा ने शैलीचिह्नक को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ऐसे भाषिक एकक जो शैलीगत वैशिष्ट्य को प्रकट करते हैं शैलीचिह्नक कहे जाते हैं।'[2]

यहाँ भाषिक एकक से तात्पर्य भाषिक इकाई या भाषिक स्तर पर व्यवहृत एकक से है। इसके लिए निल्स एरिक एंक्विस्ट ने 'एन टी टी' शब्द का प्रयोग किया है। यह एकक सन्दर्भबद्ध होने पर शैलीचिह्नक है।

शैलीचिह्नक अभिलक्षण के प्रस्ताव के अनुसार सभी भाषिक इकाइयों में शैलीचिह्नक की भूमिका परिलक्षित हो सकती है। सर्वेश्वर की 'विवशता' कविता में 'कितना' का आवर्तित प्रयोग शब्दस्तर का शैलीचिह्नक बन जाता है। इसी तरह अलंकारों का निश्चित प्रयोग भी साभिप्राय होते ही शैलीचिह्नक बन जाता है। जैसे—

---

1. निल्स एरिक एंक्विस्ट, लिंग्विस्टिक्स एण्ड स्टाइल (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ० 35
2. कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974),

'नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ वन बीच गुलाबी रंग।'[1]

यहाँ अलंकार की साभिप्रायता अलंकार को शैलीचिह्नक के रूप मे उपस्थित कर रही है। इसी तरह ध्वनि स्तर की भी सन्दर्भबद्धता शैलीचिह्नक बनकर उपस्थित होती है। 'निराला' की निम्नलिखित पंक्तियों को देखें :—

'बहुत दिनों बाद खुला आसमान
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।'[2]

यहाँ पहली पंक्ति में ध्वनि-स्तर का शैलीचिह्नक है, जहाँ 'बाद' 'खुला' और 'आसमान' में प्रयुक्त 'आ' जैसी विवृत स्वर ध्वनि व्यापकता का निर्देश करती है। इसका यहाँ सांदर्भिक प्रयोग किया गया है। तभी लगता है कि आकाश यहाँ से वहाँ तक पूरी तरह मेघमुक्त हो गया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि सांदर्भिक संभावनाओं की समष्टि ही शैलीचिह्नक है। आशय यह है कि जिस पाठ मे जहाँ सन्दर्भबद्ध शैलीचिह्नक है, वह शैलीयुक्त हैं, पर जिस पाठ में, और जहाँ सन्दर्भबद्ध शैलीचिह्नक नही है वह शैलीहीन है। इस प्रकार शैलीचिह्नक अभिलक्षण शैलीहीन और शैलीयुक्त अभिव्यक्तियों का अन्तर स्पष्ट करने मे पूरी तरह समर्थ है। एवंविध शैलीचिह्नक अभिलक्षण के अनुसार शैलीवैज्ञानिक अध्ययन का तात्पर्य शैलीचिह्नको की सूची प्रस्तुत करना तथा उनका सन्दर्भबद्ध वितरण एवं विश्लेषण करना है। वितरण से तात्पर्य वैसे समस्त परिवेशो का कथन है जिनमे किसी शैलीचिह्नक के उपस्थित होने की संभावना और असंभावना होती है।

3.4.1.3. प्रोक्ति स्तर : शैलीचिह्नक अभिलक्षण :

प्रोक्ति-स्तर के शैलीचिह्नक भी सन्दर्भबद्ध होते हैं। सन्दर्भ में वह परिवेश भी शामिल होता है, जिसमे कोई प्रोक्ति कही जाती है। एंक्विस्ट ने एक उदाहरण दिया है।[3] वर्षा का दिन है श्री एवं श्रीमती 'क' वर्षा के दिन आग के पास बैठे हैं। श्री 'क' कहते है 'कितना घृणित दिन है।' श्री 'क' का कथन संदर्भबद्ध

1. जयशंकर प्रसाद, कामायनी (इलाहाबाद : लीडर प्रेस, एकादश सं०), पृ० 54
2. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' 'खुला आसमान', राग-विराग, सम्पादक रामविलास शर्मा (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण), पृ० 124
3. अनूदित एवं उद्धृत, कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974), पृ० 55

है। सन्दर्भ है 'घर', आग के पास, वर्षा का दिन, पति का पत्नी से वार्तालाप। श्री 'क' की यह प्रोक्ति शैलीपरक है या नहीं इसके लिए उक्त सम्भावनाओं की तुलना की जाती है। यदि श्री 'ख' पत्नी के साथ बैठकर वर्षा के प्रति अपनी प्रतिक्रिया अच्छे शब्दों में अथवा 'श्री' 'क' के शब्दों की अपेक्षा अन्य शब्दों में व्यक्त करते हैं तो एक स्तर पर 'श्री' 'क' की प्रोक्ति को शैलीपरक कहा जा सकता है। यदि यह प्रोक्ति श्री 'क' के वर्ग के अन्य व्यक्तियों द्वारा भी प्रयुक्त होती है और समाज के दूसरे वर्ग द्वारा इसी सन्दर्भ में दूसरी प्रोक्ति कही जाती है तो श्री 'क' का कथन सामूहिक शैलीचिह्नक बनकर भी उपस्थित हो सकता है। अन्य व्यक्तियों से भिन्न होने पर श्री 'क' की शैली वैयक्तिक भी हो सकती है।[1] यदि यह श्री 'क' को आग के पास बैठकर की गई अधिकांश बातों में प्रयुक्त होती है तो यह श्री 'क' की पारिवारिक शैली की विशेषता भी हो सकती है।[1] डा० शर्मा ने वैयक्तिक शैली को स्पष्ट करने के क्रम में बताया है कि यदि सुमित्रानंदन पंत नदी को सदैव नारी के रूप में वर्णित करते हैं और अन्य कवि किसी दूसरे रूप में नारी का चित्रण करते हैं तो ऐसी नारी विषयक-प्रोक्ति की सन्दर्भबद्धता कवि पंत की वैयक्तिक शैली-विषयक-विशेषता होगी।

शैलीचिह्नक की मुक्त, व्यापक प्रकृति के कारण यदि किसी कृति या पाठ में कोई विशेष प्रोक्ति एक या एकाधिक बार आवर्तित होती है, सन्दर्भबद्ध होती है, उसकी अभिप्राय गहन संरचना होती है तो वहां भी प्रोक्ति स्तर का शैलीचिह्नक उपस्थित होता है। यहां आवर्त्तन स्थानिक (Local) या साकल्यपरक (Global) किसी भी संरचना के अन्तर्गत साभिप्राय रूप में उपस्थित हो सकता है। उदाहरण के लिए 'नदी के द्वीप' की जिस प्रोक्ति को अज्ञेय की कथा-भाषा पर विचार करते हुए डा० शीतांशु ने सन्दर्भगत आवृत्ति का उदाहरण माना है[2] वह प्रोक्ति भी प्रोक्ति-स्तर का शैलीचिह्नक है—

1. "वह कहता गया—राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा, मेरे पीछे कोई है और मुड़कर नहीं देखूगा और वह झुककर अपने खुले बाल मेरी आंखों के आगे डाल देगी उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।"[3]

---

1. कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा (जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974), पृ० 56
2. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', 'अज्ञेय की कथाभाषा' अज्ञेय, सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1978), पृ० 203-204
3. अज्ञेय, नदी के द्वीप (इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, तीसरा संस्करण), पृ० 205

2. 'भुवन की दोनों हाथों की उंगलियों ने ढरके हुए बालों की एक लट पकड़ ली फिर एक हाथ उसने छोड़ दिया, हाथ बढ़ाकर गौरा के माथे को धीरे-धीरे थपकने लगा।···

राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा कि मेरे पीछे कोई है और मुड़कर भी नहीं देखूंगा और फिर झुककर अपने खुले बाल मेरी आंखों के आगे डाल देगी, उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज···मेरे लिए खोज, समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।'[1]

3. 'मंसूरी में—मैंने सहसा देखा कि आगे एक मेघ है और वह तुम्हारे बालों का है—तो जान लिया तुमने कह दिया और मुझे लगा कि जानकर ही तुमने कहा है, नहीं तो तुम भी कैसे कह पाती? मैंने तुम्हें कहा था—कुछ हंसी में ही सही कहा तो था—कि जिस दिन ऐसा होगा जान लूंगा कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया पर···'[2]

यहाँ भुवन का गौरा के प्रति यह कथन अत्यंत साभिप्राय है। फलतः यह प्रोक्ति-स्तर का शैलीचिह्नक है।

3. 4. 2. अग्रप्रस्तुति (Foregrounding) अभिलक्षण वर्ग :

जब शैली पर पाठक-भावक की दृष्टि से विचार किया जाता है तब शैली-परक अभिलक्षण का अग्रप्रस्तुति अभिलक्षण-वर्ग उपस्थित होता है। शैलीचिह्नक वर्ग के विपरीत इस अभिलक्षण-वर्ग में प्रत्येक भाषाई स्तर के अभिलक्षणों को केन्द्रित-निरूपित किया जाता है। इसके मूल में पाठकीय-भावकीय पाठ-प्रक्रिया की अवधान-चेतना सक्रिय रहती है।

3.4.2.1. अग्रप्रस्तुति और इसके प्रस्तोता :

'अग्रप्रस्तुति' अंग्रेजी 'फोरग्राउंडिंग' का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी में इसके कई रूपांतर किये गये हैं, जिनमें अग्रप्रस्तुति, अग्रगामिता, तथा पेशबन्दी प्रमुख हैं। पर इनमें अधिक प्रचलित तथा स्वीकार्य रूपांतरण अग्रप्रस्तुति ही है। इसका मूल चेक भाषा का (Aktualisace) शब्द है। इस अभिलक्षण के प्रस्तोता प्राग स्कूल के भाषविद् हैव्रनिक और मुकारोव्स्की हैं। डा० 'शीतांशु' के शब्दों में 'चित्रकला के क्षेत्र में इस शब्द का भाषाविज्ञान में पहला व्यवहार विश्वयुद्ध-पूर्व भाषाविज्ञान के प्राग-निकाय द्वारा किया गया था। तब अग्रप्रस्तुति मोटे तौर पर 'अद्भुत विचलन' का अर्थ संवहन करने वाली अवधारणा के रूप में उपस्थित

---

1. वही, पृ० 296
2. वही, पृ० 326

हुई थी ।[1]

हिन्दी में इस अभिलक्षण-वर्ग के विषय में डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और डॉ० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने विचार स्पष्ट किये हैं। डा० श्रीवास्तव ने जहाँ इसे अभिलक्षण-अवधारणा के रूप मे स्पष्ट किया है वहाँ डा० 'शीतांशु' ने इसकी अभिलक्षणपरकता को स्पष्ट करते हुए इसे प्रतिमान के रूप मे प्रतिष्ठापित किया है। डा० श्रीवास्तव ने ज्योफ्री एन. लीच के आधार पर इस आच्छादक पद के जहाँ दो अभिकरण-प्ररूप माने हैं वहाँ डा० 'शीतांशु' ने इसके चार अभिलक्षण-प्ररूपों को स्वरूपित-निरूपित किया है, जिसमे तीसरे अभिलक्षण के लिए हैलीडे का आधार लिया गया है और चौथे अभिलक्षण को मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया गया है।[2]

3.4.2.1. अग्रप्रस्तुति : स्वरूप-स्पष्टीकरण :

'अग्रप्रस्तुति' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है, 'कला के क्षेत्र मे 'पेशबन्दी' (Foregrounding) से तात्पर्य अभिव्यक्ति-माध्यम के किसी पक्ष के वक्रभंगिमा के साथ उभरने से है। अपने लक्ष्य में पेशबन्दी रूढ़ और यांत्रिक संवेदनाओं को तोड़ती है। अतः इसका संबंध अनुभूत और अनुभूतियों के प्रत्यक्षीकरण के साथ बना रहता है।'[3] तकनीकी अभिकरण के रूप मे पेशबन्दी एक ओर सहेतुक विचलन का रास्ता अपनाती है और दूसरी ओर समातरता का, पर इन दोनों अभिकरणों का लक्ष्य प्रत्यक्षानुभूति को सघनता देना है, दोनों का उद्देश्य हमारे अनुभवों के बहु-आयामी पक्ष को उभारना होता है और दोनों ही का प्रयोजन कृति की बुनावट को और अधिक ऐन्द्रिय रूप प्रदान करना रहा है।'[2] इस प्रकार डा० श्रीवास्तव ने अग्रप्रस्तुति की स्वरूपगत विशेषता के बतौर रूढ़ और यांत्रिक संवेदना को तोड़ने की प्रकृति तथा वक्रभंगिमा पूर्ण प्रस्तुति को निर्दिष्ट किया है। इसके अभिकरण के रूप मे 'सहेतुक विचलन' तथा 'समांतरता' के द्वारा प्रत्यक्षानुभूति को दी जाने वाली सघनता, ऐन्द्रियता और अनुभव की बहुआयामिता को स्पष्ट किया है तथा इसके द्वारा प्राप्त होने वाली अनुभूत और अनुभूतियों के प्रत्यक्षीकरण की एकात्मकता को रेखांकित किया है।

---

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 29
2. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण, (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 29
3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, 'अग्रप्रस्तुति या पेशबन्दी', संरचनात्मक शैलीविज्ञान, (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ० 48

डा. 'शीतांशु' ने इसे पृष्ठभूमि बनाम अग्रभूमि की धारणा के बतौर स्वरूपित करते हुए लिखा है कि 'वस्तुतः अप्रस्तुति चित्रकला के क्षेत्र का एक ऐसा रूपकात्मक (Metaphorical) पद है, जिसे गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की आकृति-भूमि सम्बंधी विरोधिता (Contrast) के द्वारा समझा जा सकता है। आकृति-भूमि-सम्बंध में भूमि पर आकृति का प्रत्यक्ष सम्भव हो पाता है। आकृति और भूमि-सम्बंध की उत्कृष्ट व्याख्या किसी सामान्य आकृति को उलटते-पलटते हुए उसमें से भूमि को अलगाकर विशेष आकृति की खोज निकालने की क्रिया में प्राप्त होती है। जब किसी भूल-भुलैया वाले चित्र या रेखांकन में से छिपी हुई आकृति को सहसा ढूंढ़ निकाला जाता है, तो उसके सिवा वहाँ उपस्थित सभी रेखाएं भूमिमात्र रह जाती हैं। इस प्रक्रिया में आकृति-भूमि से एक उन्मुक्ति के रूप में पृथक् छिटककर अपना महत्त्व सिद्ध कर जाती है। इसी प्रकार साहित्य में उक्त भूमि की तरह स्थान रखने वाली सामान्य भाषा सिर्फ़ वहाँ तक प्रासंगिक सिद्ध हो पाती है, जहाँ तक अप्रस्तुति के लिए उसके संरचित विन्यास और फैलाव के लिए वह पृष्ठभूमि मुहैया कर पाती है। आकृति की ही तरह भाषिक अप्रस्तुत प्रयोग इस पृष्ठभूमि से उन्मुक्ति की तरह छिटकते और पाठक-भावक के ध्यान को आकर्षित कर अपनी साभिप्रायता का रेखांकन करने लगते हैं। इस प्रकार अप्रस्तुति का सम्बंध पाठक के मनोविज्ञान और भावकीय सहृदयता से भी बैठता है।'[1]

डा० 'शीतांशु' ने अप्रस्तुति के स्वरूप को और स्पष्ट करते हुए आगे बताया है कि हैव्रे निक और मुकारोवस्की के अनुसार सामान्य सम्प्रेष्य सन्देशों में भाषिक तत्त्व नियमतः स्वचालित (आटोमेटाइज्ड) होते हैं जबकि कविता में यह गैर-स्वचालित (डि-आटोमेटाइज्ड) होते हैं। स्वचालित भाषिक तत्त्व रूढ़ होने के कारण पाठक के मन को आकर्षित नहीं करते, वे सम्प्रेषण-मात्र करते हैं। पर गैर-स्वचालित भाषिक तत्त्व अपनी भव्यता और वक्र भंगिमा के कारण अपनी ओर पाठक का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। वस्तुतः गैर-स्वचलता भाषा के रूढ़ और यांत्रिक व्यवहार को तोड़ती है। इसमें भाषिकीय घटकों का सौंदर्यपरक सोद्देश्य अन्यथाकरण होता है।'[2]

इस प्रकार डा० 'शीतांशु' अप्रस्तुति को विक्टर श्क्लोवस्की के 'अपरिचयीकरण' की मूल अवधारणा पर आधारित मानते हैं। उनके अनुसार

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', 'अप्रस्तुति प्रतिमान', शैलीविज्ञान : प्रकार और प्रतिमान (चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1987), पृ० 132-33
2. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 29

इस आच्छादक पद के अंतर्गत मुकारोवस्की की 'अग्रप्रस्तुति' (Foregrounding) कीआरंभिक घोषणा—(1) 'विचित्र विचलन' रोमन याकोब्सन की—(2) समांतरता (Parallelism) नामक अभिलक्षण, एम. ए. के. हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट—(3) विपथन (Devation) नामक अभिलक्षण तथा इनसबके बाद स्वयं उन्हीं के द्वारा प्रस्तावित—(4) 'विरलता' नामक अभिलक्षण समाकलित है। इस प्रकार डा० 'शीतांशु' ने अग्रप्रस्तुति की स्वरूपगत विशेषता को 'गेस्टाल्ट' मनोविज्ञान की भूमि-आकृति-संबंधी अवधारणा के आलोक में स्पष्ट करते हुए, उसे भावकीय-पाठकीय सहृदयता तथा उसकी अवधान-चेतना से जोड़ते हुए इस आच्छादक पद की मूल संकल्पना-सक्रियता को स्वचलतेतर (De-Automatized) बताते हुए इसे 1. साभिप्राय विचलन 2. समांतरता 3. विपथन और 4. विरलता, जैसे चार अभिक्षलणों के द्वारा उत्कृष्ट भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के रूप में निरूपित किया है।

ज्योफ्री एन. लीच के अनुसार अग्रप्रस्तुति विकल्पक्रमी (पाराडिग्मेटिक) और विन्यासक्रमी (सिंटैग्मेटिक) जैसे दो अक्षों पर स्वरूपित होती है। लीच ने विकल्पक्रमी अग्रप्रस्तुति को 'विचलन' (डिविएशन) कहा है और विन्यासक्रमी अग्रप्रस्तुति को 'समांतरता' (पैरेलेलिज्म)।[1] वास्तव में विकल्पक्रमी और विन्यासक्रमी—ये दो भाषिक संबंध-स्तर हैं। जब भाषा-व्यवस्था के किसी एक बिन्दु पर उपस्थित विकल्प-कुलक के कई संभावित विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुन लिया जाता है तब विकल्पक्रमी सम्बध उभरता है। इस सम्बंध-दृष्टि से प्रस्तुत होने वाली अग्रप्रस्तुति को विचलित अग्रप्रस्तुति कहा जाता है। पर इसके विपरीत जब भाषा-व्यवस्था में सामने आने वाले भाषिक एकक क्रमिक शृंखला में आपस में सहभावी होकर प्रस्तुत होते हैं तब विन्यासक्रमी सम्बंध प्रस्तुत होता है। इस स्तर पर सक्रिय होने वाली अग्रप्रस्तुति भाषा में सामान्य गठन की सतह की अपेक्षा अधिक सतहों के सक्रिय होने की पूरी गुंजाइश रखती है। यहाँ कम-से-कम एक और सतह की अधिकता अतिरिक्त नियमितता को जन्म देती है। यह अतिरिक्त नियमितता भाषा के सभी स्तरों पर संभव है। इस प्रकार इस संबंध- दृष्टि से प्रस्तुत होने वाली अग्रप्रस्तुति 'समांतरित अग्रप्रस्तुति' (पैरलेल फोरग्रा उंडिंग) कहलाती है। याकोब्सन के शब्दों में यही 'चयन के अक्ष से संयोजन के अक्ष तक समतुल्यता के सिद्धांत का प्रक्षेपण होता है।'[2]

---

1. ज्योफ्री एन. लीच, 'लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड द फिगर्ज ऑव 'रेटोरिक', एसेज ऑन स्टाइल ऐण्ड लैंग्वेज, सम्पा. रोजर फाउलर (लण्डन : रूटलेज ऐण्ड कीगेन पाल, 1979), पृ. 144-146
2. रोमन याकोब्सन, 'लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड पोयटिक्स', स्टाइल इन लैंग्वेज (कैम्ब्रिज, एम. आई. टी. प्रेस, 1960), पृ० 358

अपने बाद के 'स्टायलिस्टिक्स' (Stylistics) शीर्षक निबंध में लीच ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि 'अप्रस्तुति' मूलतः 'विचलन' मात्र है और 'समांतरता' भी 'विचलन' का ही एक भेद है। वह आसामान्य अनियमितता और असामान्य नियमितता दोनों को ही विचलन का प्रभेद मानता है। उसके अनुसार विरोध, सादृश्य, समान्तरता और अनुहार (Mimesis)—इन सब में विचलन ही क्रियाशील होता है।[1] पर विचलन को अप्रस्तुति का पूर्ण पर्याय मान लेना उचित नहीं है। नियमों का अतिक्रमण और अतिरिक्त नियमों का आरोपण—ये दोनों एक ही स्थितियाँ नहीं हैं, जिनके लिए 'डिविएशन' या 'विचलन' जैसे नाम का प्रयोग किया जाय। हाँ, 'अप्रस्तुति' दोनों ही स्थितियों में बनती है। इसलिए आच्छादक पद के रूप में 'अप्रस्तुति' ही स्वीकार्य है, जिसके अन्तर्गत सभी अभिलक्षणों का समाहार हो जाता है।

वानपीयर ने अपने शोध-प्रबंध 'स्टाइलिटक्स ऐण्ड साइकोलॉजी : इनवेस्टिगेशन अॅव फोरग्राउंडिंग' में विचलन और समांतरता दोनों के अलग-अलग अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा उन्हे अप्रस्तुति का अभिलक्षण माना है।[2]

3.4.2.3. अप्रस्तुति-अभिलक्षण : प्रारूप-स्पष्टीकरण

अप्रस्तुति के पूर्वकथित चारों अभिलक्षणों को निम्नलिखित रूप में परिभाषित-स्वरूपित किया जाता है।

3 4.2.3.1. विचलन :

विचलित अप्रस्तुति का मूलाधार विचलन की संकल्पना है। यह अंग्रेजी Deviation का हिन्दी रूपांतर है। विचलन की संकल्पना मानक की संकल्पना से सम्बद्ध है। प्रत्येक भाषा का अपना मानक रूप होता है। जब उस भाषा का रचनाकार भाषा के इस मानक रूप का अतिक्रमण करता है तब विचलन उपस्थित होता है। यहाँ विचलन की संकल्पना अव्याकरणिकता पर आधारित होती है। पर विचलन अस्वीकार्यता पर भी आधारित होता है। अव्याकरणिक विचलन ध्वनि, रूप शब्द और वाक्य के स्तर पर क्रियाशील होता है, किन्तु अस्वीकार्य विचलन अर्थ और प्रोक्ति के स्तर पर क्रियाशील रहता है।

आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने 'विचलन' को काव्यभाषा की उस सर्जन-

1. ज्योफी, एन. लीच, 'स्टायलिस्टिक्स' डिस्कोर्स, ऐण्ड लिटरेचर, संपा. टी. ए. वानडिज्क (एम्सटर्डम : जान वैनजामिन्स पब्लिशिंग कम्पनी, 1985), पृ. 46-47-48
2. वानपीयर, स्टाइलिस्टिक्स ऐण्ड साइकोलाजी : इन्वेस्टिगेशन अॅव फोरग्राउंडिंग (लण्डन : क्रूम हेल्म, 1986)

क्षमता का प्रमाण माना है, जो क्षमता सन्दर्भ के बीच स्थिर और सुनिश्चित सम्बन्धों को तोड़ती है, सर्जनात्मक वाक्य-विन्यास को उपस्थित करती है, चालू भाषा के वाक्य-विन्यास को मोड़ती है और इस प्रकार काव्य-भाषा की संरचना की दिग्बोधक चुम्बकीय सुई बन जाती है। उनके शब्दों में, 'जिसे गद्य की दृष्टि से मानक रूप में विचलन (डेविएशन) कहा जाता है, वह काव्यभाषा के गठन की दृष्टि से भाषा की सर्जन-क्षमता का प्रमाण बन जाता है।'[1] × × 'चूंकि सामान्य भाषा का उद्देश्य सीमित है इसलिए वह संकेत और संदर्भ के बीच के स्थिर और सुनिश्चित संबंधों को तोड़ने की आवश्यकता नहीं महसूस करती, किन्तु काव्यभाषा इन सम्बन्धों को तोड़ने के लिए इस कारण लाचार है कि काव्यभाषा पूर्व-निश्चित सम्बन्धों को एक नयी वास्तविकता से अभिभूत करके विचलित करती है।'[2] × × 'वस्तुतः विचलन मुख्यतः सर्जनात्मक कृति के निजी वाक्य-विन्यास का ही एक आवश्यक उपकरण है।'[3] × × 'काव्यात्मक वाक्य-विन्यास काव्यार्थ की दृष्टि से चालू भाषा के वाक्य-विन्यास को मोड़ने की एक प्रक्रिया है।'[4] × × × 'यह (विचलन) वस्तुतः काव्यभाषा के अपेक्षित अन्वय की पूर्ति के लिए ही उपयोजित किये जाते हैं और इस दृष्टि से इन्हें विचलन न मानकर काव्यभाषा की संरचना की दिग्बोधक चुम्बकीय सुई मानना चाहिए, जो काव्य के ध्रुव-बिन्दु की ओर एक झटके में बल खाकर मुड़ जाती है।'[5]

विद्यानिवास मिश्र ने विचलन की अभिव्यक्ति को निम्नलिखित रूपों में निर्दिष्ट किया है—

(1) वाक्य-रचना में क्रमभग के रूप में।

(2) वाक्य में प्रत्याशित समनुहार (वचन, पुरुष, लिंग, काल आदि की अन्विति के भंजन के रूप में)।

(3) व्याकरणिक कोटि के अन्तरण (क्रिया को कर्म, कर्म को क्रिया में रूपांतरित करना) के रूप में।

(4) वाक्य की बाह्य संरचना के स्तर पर अपूर्ण छोड़ देने में।

1. विद्यानिवास मिश्र, 'काव्यभाषा का गठन और साभिप्राय विचलन', रीति-विज्ञान (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973), पृ० 75
2. विद्यानिवास मिश्र, 'काव्यभाषा का गठन और साभिप्राय विचलन', रीति-विज्ञान (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973), पृ० 76
3. वही, पृ० 79
4. वही, पृ० 80
5. वही, पृ० 83

डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार—सहेतुक विचलन को शैलीविज्ञान दो निश्चित सन्दर्भों में ग्रहण करता है—व्याकरणिकता (ग्रामेटिक लिटी) का सन्दर्भ और आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) का सन्दर्भ।[1]

डॉ० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' के शब्दों में—विचलन में सामान्य गद्य भाषा के मानक (नार्म) से अतिक्रमण होता है। यह अतिक्रमण अव्याकरणिकता (अनग्रामेटिकेलिटी) और अस्वीकार्यता (अनएक्सेप्टिबिलिटी) जैसी दो दिशाओं में होता है।[2]

3.4.2.3.2. विपथन :

'विपथन' अंग्रेजी Deflection का हिन्दी रूपांतर है। इसके मूल में भी मानक से अतिक्रमण की अवधारणा क्रियाशील होती है। किन्तु यहाँ मानक भाषा के व्याकरण का न होकर युग, प्रवृत्ति, रचनाकार अथवा विशेष रचना का अपना मानक होता है। डॉ० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने 'विपथन' को विचलन से अलगाते हुए लिखा है—'जब रचनाकार अपने द्वारा स्वीकृत और सुस्थिर एक मानक की प्रत्याशा से अतिक्रमण कर जाता है, और इसके समांतर या विरोध में दूसरे मानक को उपस्थित करता है, तब वहाँ विपथन होता है।'[3] यहाँ मानक की पद्धति लगातार प्रत्याशित रहती है, पर प्रायः कृतिकार कृति के अन्त में इस प्रत्याशा को तोड़ता हुआ इससे अतिक्रमण कर जाता है। यह अतिक्रमण ही विपथन बनकर उपस्थित होता है। यहाँ अंत की जगह कृतिकार अपनी कृति के पूर्वांत में अथवा मध्य में भी यह अतिक्रमण कर सकता है। किसी युग या साहित्य-प्रवृत्ति की प्रत्याशा को बाधित करने से भी ऐसा विपथन उपस्थित होता है। विचलन की तरह विपथन भी भाषा के सभी स्तरों—ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, प्रोक्ति—पर क्रियाशील होता है।

3.4.2.3.3. समांतरता :

समांतरता अंग्रेजी Parallelism का हिन्दी अनुवाद है। यह एक ओर किसी भी भाषिक एकक की आवृत्ति-नियमितता में क्रियाशील होती है तो दूसरी ओर किसी भी भाषिक एकक की व्यतिरेकिता को भी उपस्थित करती है।

डॉ० भोलानाथ तिवारी समांतरता को परिभाषित करते हुए कहते हैं,

---

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, *संरचनात्मक शैलीविज्ञान* (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ० 49
2. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 30
3. वही, पृ० 31

'समांतरता से आशय है किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानांतर प्रयोग।'[1] डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार—'समांतरता का अर्थ है किसी भाषिक लक्ष्य या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता।'[2] डा० 'शीतांशु' समांतरता के दो प्रकार स्वीकार करते हुए कहते हैं—'समांतरता मे समता और विरोध की दो दिशाएँ खुलती हैं। विविध प्रकारो की आवृत्ति-निर्भर समांतरता समतामूलक समांतरता बनकर आती है और विरोध-निर्भर समातरता विरोधी समांतरता बनकर।'[3]

इस तरह इसके दो रूप हो जाते हैं—3.4.2.3.3.1 समतामूलक और 3.4.2.3.3.2. विरोधमूलक। समांतरता को अन्य भाषिक अभिलक्षणों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है—3.4.2.3.3.3. संसक्तिमूलक समांतरता और 3.4.2 3.3.4. समंजसतामूलक समांतरता। इसके अतिरिक्त किसी भी कृति में स्थानिक संरचना (Lccal Structure) और साकल्यपरक सरचना (Global Stiuctuie) के आधार पर भी इसके 3.4.2.3.3.5. स्थानिक समांतरता और 3.4.2.3.3.6. साकल्यपरक समांतरता जैसे भेद किये जा सकते हैं। स्थानिक समातरता मे आवृत्ति, विरोध को नैरंतर्य मे रेखांकित किया जाता है, पर साकल्यपरक समातरता मे पूरी कृति के सन्दर्भ में। समांतरता भी 'विचलन' और 'विपथन' जैसे अभिलक्षणो की तरह भाषा के सभी स्तरों—ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, प्रोक्ति अर्थ—पर क्रियाशील होती है।

3.4.2.3.4. विरलता :

समांतरता में जहाँ विशेष भाषिक एकक की बहुलता देखी जाती है, वहाँ विरलता में विशेष भाषिक एकक की विरलता देखी जाती है। इन दोनो को प्रतिपाद्य (Theme) और उन्मीलक (Key) की सकल्पनाओ से जोड़ा जाता है। *प्रतिपाद्य की संकल्पना आवर्तनमूलक होती है। किन्तु उन्मीलक* की संरचना विरल होती है। यहां ध्यान देने योग्य है कि विरल रूप मे कभी-कभी विचलन और विपथन भी उपस्थित हो सकता है, पर तब वहाँ विरलता नाम का अभिलक्षण क्रियाशील नहीं होगा, बल्कि विरल तत्त्व विचलन और विपथन के अंतर्गत ही क्रियाशील होगे। विरलता तब उपस्थित होती है, जब समातरता, विचलन

---

1. भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान (दिल्ली : शब्दकार, 1977), पृ० 88
2. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान (दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979), पृ० 58
3. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 63

और विपथन—तीनों में से कोई भी अभिलक्षण क्रियाशील नहीं होता है। इसकी संघटना को स्पष्ट करते हुए डा० 'शीतांशु' ने लिखा है कि 'यद्यपि पाठ की प्राधिक प्रमुखता या अप्रप्रस्तुति अर्थ से जुड़कर कभी 'विचलन' के सहारे उपस्थित होती है तो कभी 'विपथन' के सहारे और कभी 'समांतरता' के सहारे, किन्तु कृति अथवा पाठ में कभी-कभी ऐसी स्थिति भी उत्पन्न होती है, जब वहाँ न तो 'विचलन' होता है, न ही विपथन, और न ही 'समांतरता'। फिर भी शब्द प्रमुख होकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए अप्रप्रस्तुत हो जाते हैं। वस्तुतः ऐसे शब्द उन्मीलक शब्द (की-वर्ड) होते हैं, जो कृति अथवा पाठ की गहन संरचना से जुड़कर अर्थवत्ता का संचालन करते हैं। इनके हाथ में कृति और पाठ के कथ्य का नियंत्रण-सूत्र होता है। कृति अथवा पाठ में शब्द-प्रयोगों की प्रायः दो कोटियाँ की गई हैं—(1) प्रतिपाद्य शब्द (थीम-वर्ड) और (2) उन्मीलक शब्द (की-वर्ड)। प्रतिपाद्य शब्द किसी कृति अथवा पाठ में अनेकशः आवृत्त होते हैं। इसके विपरीत उन्मीलक शब्द के प्रयोग विरल होते हैं। प्रतिपाद्य शब्द की क्रियाशीलता को सदैव समांतरता के अभिकरण के सहारे रेखांकित किया जाता है, किन्तु उन्मीलक शब्द को सदैव 'विचलन' के सहारे रेखांकित नहीं किया जा सकता। यदि अव्याकरणिकता और अस्वीकार्यता उसके मूल में नहीं है तो विचलन नहीं होगा और यदि रचनाकार की 'प्रायिक प्रत्याशित' पद्धति के समनुरूप है तो, 'विपथन' भी नहीं होगा। दूसरे शब्दों में 'विरलता' का अभिकरण निम्नलिखित 'अवयवभूतार्थता' (Componential analysis) को प्रस्तुत करता है। विरलता=

—अव्याकरणिकता
—अस्वीकार्यता
—समांतरता
+लेखकीय विरलता
+प्रायिक प्रत्याशा
+गहन संरचना

ऐसे में यहाँ प्रमुखता शुद्ध रूप में 'विरलता' (रेयरनेस) पर आधारित होगी। विरलता ही यहाँ अप्रप्रस्तुति का अभिकरण बनेगी।[1] डा० 'शीतांशु' विचलन को लिविन के अनुरूप आंतरिक और बाह्य रूप में वर्गीकृत नहीं कर उसे उसकी समांतर अवधारणा के रूप में ग्रहण करते है तथा तर्कपूर्वक 'विरलता' को अलग अवधारणा के बतौर स्वरूपित करते हैं। उनके शब्दों में, 'मुझे ऐसा लगता है कि विचलन की अवधारणा को इतनी व्यापकता देना, जिससे 'विपथन' और

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 32

'विरलता' को सांख्यिकीय तुलनात्मक विभेदकता के आधार पर उसके अन्तर्गत कर लिया जाय, उचित नहीं है, क्योंकि दोनों अवधारणाएँ उसके प्रभेद-रूप में स्वरूपित नहीं होकर उसके समांतर चलती हैं। तुलनात्मक विभेदकता एक ही रचनाकार की कृतियों के सन्दर्भ में 'विचलन' के रूप में उपस्थित न होकर 'विपथन' के रूप में उपस्थित होती है और कई रचनाकारों की कृतियों के संदर्भ में उनके अलग-अलग शैलीपरक अभिलक्षण का चिह्न बनकर। 'विपथन' के रूप में क्रियाशील तुलनात्मक विभेदकता व्याकरणिक शब्दरूप—संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि को तो रेखांकित कर सकती हैं, किन्तु शब्द-विशेष को नहीं। एक तथ्य है कि किसी विरल शब्द-प्रयोग की पृष्ठभूमि में लेखकीय प्रायिक प्रत्याशा से अतिक्रमण हुआ ही हो, यह आवश्यक नहीं है। दूसरे, किसी भी रचना में इकहरे या विरल प्रयोग वाले अनेक संज्ञा या विशेषण आदि शब्द हो सकते हैं। पर उनमें साभिप्राय या गहन संरचना से जुड़े शब्द एक-दो ही मिलेंगे। अतः सारे संज्ञा, विशेषण जैसे शब्दों को रेखांकित कर भी अभीष्ट साभिप्रायता वाले शब्द को अलग से रेखांकित नहीं किया जा सकता है, जो वस्तुतः अप्रस्तुत होते हैं। जहाँ तक कई रचनाकारों की कृतियों में इसके सहारे विभेदकता को स्पष्ट करते हुए शैलिकीय अभिलक्षण को रेखांकित करने का प्रश्न है, वहाँ विभेदक शैलीतत्त्व तो सचमुच स्पष्ट हो सकते हैं, परन्तु 'विचलन' का वहाँ कोई अस्तित्व नहीं होगा, क्योंकि विचलन सदैव ज्ञात मानक से ही होता है और ऐसा अधिक सम्भव है कि एक रचनाकार ने दूसरे रचनाकार की कृतियों को पढ़कर अपने शैलिकीय अभिलक्षण नहीं अपनाये हों। हिन्दी में तो चतुरसेन शास्त्री ने किसी दूसरे हिन्दी उपन्यासकार, कहानीकार की कोई भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी, यहाँ तक कि 'गोदान' भी नहीं पढ़ा था। फिर उनके और प्रेमचंद के शैलिकीय तत्त्वों में तुलनात्मक विभेदकता विचलन-प्रसूत शैली को कैसे रेखांकित कर सकती है ? स्पष्ट है कि सोपाधिक या सापेक्ष रूप में भी मानक की स्थापना सभी स्थलों पर नहीं की जा सकती है। तुलनात्मक विभेदकता और विवेच्य विरलता' का एक बड़ा अन्तर इनके अनुप्रयोगी सोपान (एप्लिकेशन-स्केल) और प्रकार्यात्मक सोद्देश्यता का भी है। तुलनात्मक विभेदकता की सोद्देश्यता 'स्टाइलोमीट्रिक' होने की है, जिसे 'एट्रीब्यूटिव' कहा जाता है, जबकि 'विरलता' की विशेषता'''स्टायलिस्टिक' होने में है जिसे 'इन्टरप्रेटिव' कहा जाता है।"[1]

3.4 2.4. प्रोक्ति-स्तर: अप्रस्तुति अभिलक्षण-निदर्शन

प्रोक्ति-स्तर पर अप्रस्तुति के अभिलक्षणों का निदर्शन निम्नलिखित रूप में द्रष्टव्य है—

---

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण (दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984), पृ० 32-33

3.4.2.4.1. विचलन का निदर्शन
3.4.2.4.2. विपथन का निदर्शन
3.4.2.4.3. समांतरता का निदर्शन
3.4.2.4.4. विरलता का निदर्शन

3.4.2.4.1. विचलन का निदर्शन :

प्रोक्ति-स्तर का विचलन वहाँ होता है जहाँ एक पूरी प्रोक्ति में कथित कई अंशों मे कुछ अंशों की तो आगे व्याख्या की जाती है, पर कम-से-कम एक या कुछ अंशों की व्याख्या का अध्याहार कर दिया जाता है।

प्रोक्ति-स्तर पर विचलन का निदर्शन द्रष्टव्य है—

'कह रहे थे कि मुसलमानों के रहने की जगह का यह नाम किसने दे दिया ? क्या सारे मुसलमान कसाई होते हैं।'[1]

'दरअसल रहमान भाई गरीबों के मुहल्ले को कोई नाम दे दो, क्या फर्क पड़ता है। गरीब लोगों को बसने के लिए कोई चुनाव थोड़े करना पड़ता है। जहाँ सस्ती जगह या मकान मिला उसमें समाने की कोशिश करते हैं। कुछ कसाई पहले यहाँ रहते होंगे, एरिया उपेक्षित रहा होगा, धीरे-धीरे गरीब मुसलमान यहाँ बसने लगने होंगे, बस गई कसाई चाल।'[2]

यहाँ पहली प्रोक्ति के पहले अंश में मुसलमानों के मुहल्ले के नामकरण के बारे मे पूछा जाता है और दूसरे अंश में यह पूछा जाता है कि क्या सारे मुसलमान कसाई होते हैं, पर दूसरी प्रोक्ति मे सिर्फ मुसलमानों के मुहल्ले के नामकरण के बारे मे बताया जाता है पर 'क्या सारे मुसलमान कसाई हैं,' पूर्व प्रोक्ति के इस अंश का कोई उत्तर नही दिया जाता है। इसका अध्याहार कर दिया जाता है। इस प्रकार सिर्फ मुहल्ले के नामकरण का कारण बताने और सारे मुसलमान के कसाई होने वाले प्रश्न का उत्तर नही देने के कारण यहाँ प्रोक्ति-स्तरीय विचलन प्रस्तुत होता है।

3.4.2.4.2. विपथन का निदर्शन :

प्रोक्ति-स्तर का विपथन वहाँ उपस्थित होता है, जहाँ आधार-भाषा में अपने द्वारा बनाये गये मानक का रचनाकार अतिक्रमण कर जाता है। यहाँ यह ध्यानीय और महत्त्वपूर्ण होता है कि प्रायः प्रोक्तियाँ आधार-भाषा में रचनाकार का मानक बन कर आएँ, पर नयी प्रोक्ति इसका अतिक्रमण कर जाए।

1. रामदरश मिश्र, दूसरा घर, (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1986), पृ० 170
2. वही,

मोती काँप रहा है। सारे गीत में वह लड़की उसे पराई लगती रहती है, पर आखिरी पंक्ति गाती हुई वह लड़की उसे अपनी हो गयी लगती है।'[1] ×—'तब एक की उम्र बीस बरस थी, दूसरी की चालीस बरस···और फिर यह दहलीज और भी हँसी···जब एक बारात इस दहलीज से बाहर गयी और एक डोली इस दहलीज के अन्दर आयी।'[2]

पहले उदाहरण में 'परायी लगने' और अपनी हो जाने की प्रोक्तिपरकता विरोधमूलक है तो दूसरे उदाहरण मे दहलीज से बाहर जाने और दहलीज के अन्दर आने की प्रोक्तिपरकता विरोधमूलक। अतः यहाँ प्रोक्ति-स्तर की विरोध-मूलक समांतरता स्पष्ट होती है।

3.4.2.4.3.3. संसक्तिमूलक समांतरता :

संसक्तिमूलक समांतरता के समतापरक एवं विरोधपरक दोनों ही भेदों के प्रोक्ति-स्तरीय निदर्शन नीचे द्रष्टव्य हैं—

3.4.2.4.3.3.1. समतापरक संसक्तिमूलल समांतरता :

प्रोक्ति स्तर पर इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

'रानी ने पहले गुलाब का फूल तोड़ा और उस मर्द के कोट में टाग दिया, फिर अपने होठों की मुस्कान छुई और उस मर्द के होठो पर रख दी।'[3]

यहाँ संसक्ति शब्द के आवर्त्तन के साथ-साथ प्रोक्ति की संरचना मे भी क्रियाशील है। फलतः कथित प्रकार की समांतरता है।

3.4.2.4.3.3.2. विरोधी ससक्तिमूलक समांतरता :

प्रोक्ति-स्तर पर निम्नांकित निदर्शन द्रष्टव्य है—

'पहले मेरा दायाँ हाथ सुन्न हुआ, फिर दायीं बाँह, दायां कन्धा फिर बायां हाथ, बायीं बाँह और बायां कन्धा।'[4]

यहाँ पहले, फिर और दायां, बायां की विरोधी शाब्दिक आवृत्ति तथा विरोधी संरचना इस प्रकार की प्रोक्ति समांतरता को उद्भूत कर रही है।

1. अमृता प्रीतम, 'जाने कौन रंग रे', अमृता प्रीतम की चुनी हुई कहानियाँ, (दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 1982), पृ० 125-126
2. अमृता प्रीतम, 'जरी का कफन', अमृता प्रीतम की चुनी हुई कहानियाँ, पूर्ववत्, पृ० 131
3. अमृता प्रीतम, 'मलिका', अमृता प्रीतम की चुनी हुई कहानियाँ, पूर्ववत्, पृ० 103
4. अमृता प्रीतम, 'एक शहर की मौत', अमृता प्रीतम की चुनी हुई कहानियाँ, (दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 1982), पृ० 97

3.4.2.4.3.4 समंजसतामूलक समांतरता

3.4.2.4.3.4.1 ध्वनिक समंजसतामूलक समांतरता

इसका उदाहरण द्रष्टव्य है–

'सूर्य की किरणें झुकीं और उन्होंने हौले से गुलाब की एक टहनी को छुआ, एक मर्द की नजरें झुकीं और उन्होंने हौले से रानी के होठों को छुआ।'[1]

यहाँ 'झुकना' और 'छूना' की आवृत्ति वाली ध्वनिक समंजसता समांतरता की सृष्टि कर रही है।

3.4.2.4.3.4.2. साम्यपरक समंजसतामूलक समांतरता

ऐसी प्रोक्तिगत समांतरता पूरी कृति के आधार पर अपना स्वरूप स्पष्ट करती है। इस दृष्टि से 'अम्बपाली' की निम्नांकित प्रोक्तियाँ विचारणीय हैं—

1. तेरे चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।'[2]
2. 'मधु हजार-हजार राजकुमार। उफ, यह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला ...[3]
3. ज्योतिषी ने अम्बपाली से कहा—'हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे।'[4]
4. सुमना, हाँ, हाँ, इस उम्र में सब लड़कियाँ, राजकुमारों का ही सपना देखती हैं। हजार-हजार राजकुमार? लाख-लाख देवकुमार।[5]
5. मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से क्यों काँपती है और जब हजारों-हजार राजकुमार।[6]
6. मैं राजनर्तकी मधु, मधु, मैं राजनर्तकी···हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट···हो···हो···हो···हो मेरे, चरणों पर रे मेरे चरणों पर··· मधु···तू घूर क्यों रही है···मैं राजनर्तकी।[7]
7. ···राजनर्तकी··· राजनर्तकी···अरुण मैं राजनर्तकी···राजनर्तकी··· राजनर्तकी···हा···हा···हा···हा···हजार-हजार···राज···।[8]
8. हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की जरूरत नहीं होती। उन्हीं के हजार-हजार राजमुकुट चरणों की धूल चाटने लगते हैं। हम नारियों की भी एक महिमा है। यह क्यों भूल जाती है भोली लड़की।[9]

---

1. वही, पृ० 103
2. रामवृक्ष बेनीपुरी, अम्बपाली (दिल्ली : राजपाल ऐंड सन्ज, 1986), पृ० 15
3. वही, पृष्ठ 15
4. वही, पृ० 17
5. वही, पृ० 20
6. वही, पृ० 27
7. वही, पृ० 32
8. वही, पृ० 33
9. वही, पृ० 38

9. इस चांद की तरह, जो हजार, हजार तारों से घिरा रहकर अपनी हास्य-ज्योत्स्ना से जगत को हमेशा पुलकित-प्रफुल्लित किए रहता है।...नारी के लिए बीच का रास्ता नही है चयनिके ।[1]
10. वहाँ एक पुरुष हजार नारियाँ, आज होगी एक नारी और हजार-हजार ...हाँ हजार-हजार राजकुमार ।[2]
11. जिसका सिर तुम्हारे चरणों पर अवनत था, उसके चरणो पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटते हैं।
    अरुणा हजार...हजार । ओ हो...हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट ।[3]

ऊपर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुटों के अम्बपाली के चरणो मे लोटने की प्रोक्ति 'अम्बपाली' नाटक मे ग्यारह बार आवर्तित होकर साकल्यमूलक समंजसतापरक समांतरता की सृष्टि कर रही है । ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी अम्बपाली के जीवन मे साकार हो जाती है और वह राजनर्तकी बनती है । वाणी की संभावना सार्थकता प्राप्त कर लेती है ।

3.4.2.4.4. विरलता का निदर्शन :

प्रोक्ति स्तर पर सूचित बनने वाली विरलता का निदर्शन द्रष्टव्य है—

'नहीं दोस्त अब तक जो कुछ सीखा है, असली सीखना वही है । वही तुम्हारी पूँजी है । वही हम सबकी पूंजी है । अब जो कुछ सीखेंगे, वह असली नही होगा । तुममें ताकत होगी तो अब तक के सीखे हुए सत्य को नई परिस्थितियों मे निखारोगे, विकसित करोगे और निरन्तर एक शक्ति अनुभव करते जाओगे ।'[4]

प्रस्तुत प्रोक्ति पूरी कृति में एक ही बार प्रयुक्त हुई है जो कृति के लक्ष्य को खोलने में सहायक सिद्ध होती है । इस प्रोक्ति में लेखक ने सत्य की पहचान के विषय में बताया है—यदि भीतर की शक्ति नही होगी तो सत्य को खो देंगे। यदि वह शक्ति होगी तो विकास का और निखार होगा। इस प्रकार यहाँ भीतरी शक्ति की पहचान पर प्रकाश डाला गया है ।

3.5. निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षण की प्रकृति विशिष्ट होती है, वह गहन संरचना से जुड़ी होत है और उसमें भाषा का सौंदर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। साथ ही यह विवेचन किसी भी पाठ । प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षणों का विश्लेयण-विवेचन करने के लिए सम्यक् आधार प्रदान करता है ।

---

1. रामवृक्ष बेनीपुरी, अम्बपाली (दिल्ली : राजपाल एँड संस, 1985), पृ० 47
2. वही, पृ० 49 3. वही, पृ० 70
4. रामदरश मिश्र, दूसरा घर (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1986), पृ० 60

3.4.2.4.3.4. समंजसतामूलक समांतरता :

3.4.2.4.3.4.1. स्थानिक समंजसतामूलक समांतरता :

इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

'सूर्य की किरणें झुकी और उन्होंने हौले से गुलाब की एक टहनी को छुआ, एक मर्द की नजरें झुकी और उन्होंने हौले से रानी के होठों को छुआ।'[1]

यहाँ 'झुकने' और छूने की प्रतिज्ञप्ति वाली स्थानिक समंजसता समांतरता की सृष्टि कर रही है।

3.4.2.4.3.4.2. साकल्यपरक समंजसतामूलक समांतरता :

ऐसी प्रोक्तिगत समांतरता पूरी कृति के आधार पर अपना स्वरूप स्पष्ट करती है। इस दृष्टि से 'अम्बपाली' की निम्नांकित प्रोक्तियाँ विचारणीय हैं—

1. 'तेरे चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।'[2]
2. 'मधु हजार-हजार राजकुमार। उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला···[3]
3. ज्योतिषी ने अम्बापाली से कहा—'हजार···हजार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे।'[4]
4. सुमना, हाँ, हाँ, इस उम्र में सब लड़कियाँ, राजकुमारों का ही सपना देखती हैं···हजार-हजार राजकुमार ? लाख-लाख देवकुमार।[5]
5. मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से क्यों काँपती है और जब हजारों-हजार राजकुमार।[6]
6. मैं राजनर्तकी मधु, मधु, मैं राजनर्तकी···हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट···हो···हो···हो···हो · मेरे, चरणों पर रे मेरे चरणों पर··· मधु···तू घूर क्यों रही है···मैं राजनर्तकी।[7]
7. ···राजनर्तकी····राजनर्तकी···अरुण मैं राजनर्तकी···राजनर्तकी··· राजनर्तकी···हा···हा···हा···हा···हजार-हजार···राज···।[8]
8. हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की जरूरत नहीं होती। उन्हीं के हजार-हजार राजमुकुट चरणों की धूल चाटने लगते हैं। हम नारियों की भी एक महिमा है। यह क्यों भूल जाती है भोली लड़की।[9]

---

1. वही, पृ० 103
2. रामवृक्ष बेनीपुरी, अम्बपाली (दिल्ली : राजपाल ऐंड संज, 1986), पृ० 15
3. वही, पृष्ठ 15
4. वही, पृ० 17
5. वही, पृ० 20
6. वही, पृ० 27
7. वही, पृ० 32
8. वही, पृ० 33
9. वही, पृ० 38

9. इस चांद की तरह, जो हजार, हजार तारों से घिरा रह कर अपनी हास्य-ज्योत्स्ना से जगत को हमेशा पुलकित-प्रफुल्लित किए रहता है। नारी के लिए बीच का रास्ता नही है चयनिके ।[1]
10. वहां एक पुरुष हजार नारियां, आज होगी एक नारी और हजार-हजार ···हां हजार-हजार राजकुमार ।[2]
11. जिसका सिर तुम्हारे चरणों पर अवनत था, उसके चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटते हैं।
अरुणा हजार···हजार । ओ हो···हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट ।[3]

ऊपर हजार-हजार राजकुमारो के मुकुटों के अम्बपाली के चरणों में लोटने की प्रोक्ति 'अम्बपाली' नाटक में ग्यारह बार आवर्तित होकर सा... कल्पमूलक समंजसतापरक समांतरता की सृष्टि कर रही है। ज्योतिषी की यह भ... विष्यवाणी अम्बपाली के जीवन में साकार हो जाती है और वह राजनर्तकी बनती है। वाणी की संभावना सार्थकता प्राप्त कर लेती है।

3.4.2.4.4. विरलता का निदर्शन :

प्रोक्ति स्तर पर मूर्तित बनने वाली विरलता का निदर्शन द्रष्टव्य है—

'नही दोस्त अब तक जो कुछ सीखा है, असली सीखना वही है। वही तुम्हारी पूंजी है। वही हम सबकी पूंजी है। अब जो कुछ सीखेंगे, वह असली नही होगा। तुममे ताकत होगी तो अब तक के सीखे हुए सत्य को नई परिस्थितियों में निखारोगे, विकसित करोगे और निरन्तर एक शक्ति अनुभव करते जाओगे।'[4]

प्रस्तुत प्रोक्ति पूरी कृति में एक ही बार प्रयुक्त हुई है जो कृति के लक्ष्य को खोलने में सहायक सिद्ध होती है। इस प्रोक्ति में लेखक ने सत्य की पहचान के विषय में बताया है—यदि भीतर की शक्ति नही होगी तो सत्य को खो देंगे। यदि वह शक्ति होगी तो विकास का और निखार होगा। इस प्रकार यहाँ भीतरी शक्ति की पहचान पर प्रकाश डाला गया है।

3.5. निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षण की प्रकृति विशिष्ट होती है, वह गहन संरचना से जुड़ी है और उसमे भाषा का सौंदर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। साथ ही यह विवेचन किसी भी पाठ। प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षणों का विश्लेषण-विवेचन करने के लिए सम्यक् आधार प्रदान करता है।

1. रामवृक्ष बेनीपुरी, अम्बपाली (दिल्ली : राजपाल एंड संस, 1985), पृ० 47
2. वही, पृ० 49 3. वही, पृ० 70
4. रामदरश मिश्र, दूसरा घर (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन 1986), पृ० 56

3.4.2.4.3.4. समंजसतामूलक समांतरता :

3.4.2.4.3.4.1. स्थानिक समंजसतामूलक समांतरता :

इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

'सूर्य की किरणें झुकी और उन्होंने हौले से *गुलाब की एक टहनी* को छुआ, एक मर्द की नजरें झुकी और उन्होंने हौले से रानी के होठों को छुआ।'[1]

यहाँ 'झुकने' और छूने की *प्रतिज्ञप्ति वाली स्थानिक समंजसता समांतरता* की सृष्टि कर रही है।

3.4.2.4.3.4.2. साकल्यपरक समंजसतामूलक समांतरता :

ऐसी प्रोक्तिगत समांतरता पूरी कृति के आधार पर अपना स्वरूप स्पष्ट करती है। इस दृष्टि से 'अम्बपाली' की निम्नांकित प्रोक्तियाँ विचारणीय हैं—

1. 'तेरे चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।'[2]
2. 'मधु हजार-हजार राजकुमार। उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला…[3]
3. ज्योतिषी ने अम्बापाली से कहा—'हजार…हजार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणो पर लोटेंगे।'[4]
4. सुमना, हाँ, हाँ, इस उम्र मे सब लड़कियाँ, राजकुमारों का ही सपना देखती हैं…हजार-हजार राजकुमार ? लाख-लाख देवकुमार।[5]
5. मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से क्यों काँपती है और जब हजारों-हजार राजकुमार।[6]
6. मैं राजनर्तकी मधु, मधु, मैं राजनर्तकी…हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट…हो…हो…हो…हो ''मेरे, चरणो पर रे मेरे चरणो पर… मधु…तू घूर क्यो रही है…मैं राजनर्तकी।[7]
7. …राजनर्तकी…राजनर्तकी…अरुण मैं राजनर्तकी…राजनर्तकी… राजनर्तकी…हा…हा…हा…हा…हजार-हजार…राज…।[8]
8. हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की जरूरत नही होती। उन्ही के हजार-हजार राजमुकुट चरणो की धूल चाटने लगते हैं। हम नारियों की भी एक महिमा है। यह क्यों भूल जाती है भोली लड़की।[9]

---

1. वही, पृ० 103
2. रामवृक्ष बेनीपुरी, *अम्बपाली* (दिल्ली : राजपाल ऍड संज, *1986*), पृ० 15
3. वही, पृष्ठ *15*
4. वही, पृ० *17*
5. वही, पृ० 20
6. वही, पृ० 27
7. वही, पृ० 32
8. वही, पृ० 33
9. वही, पृ० 38

9. इस चांद की तरह, जो हजार, हजार तारों से घिरा रहकर अपनी हास्य-ज्योत्स्ना से जगत को हमेशा पुलकित-प्रफुल्लित किए रहता है। नारी के लिए बीच का रास्ता नहीं है चयनिके ।[1]
10. वहाँ एक पुरुष हजार नारियाँ, आज होगी एक नारी और हजार-हजार ···हाँ हजार-हजार राजकुमार ।[2]
11. जिसका सिर तुम्हारे चरणो पर अवनत था, उसके चरणों पर हजार-हजार राजकुमारो के मुकुट लोटते हैं।
    अरुणा हजार···हजार । ओ हो···हजार-हजार राजकुमारो के मुकुट ।[3]

ऊपर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुटो के अम्बपाली के चरणो मे लोटने की प्रोक्ति 'अम्बपाली' नाटक मे ग्यारह बार आवर्तित होकर साकल्यमूलक समंजसतापरक समांतरता की सृष्टि कर रही है । ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी अम्बपाली के जीवन में साकार हो जाती है और वह राजनर्त्तकी बनती है । वाणी की संभावना सार्थकता प्राप्त कर लेती है ।

3.4.2.4.4. विरलता का निदर्शन :

प्रोक्ति स्तर पर सूक्ति बनने वाली विरलता का निदर्शन द्रष्टव्य है—

'नही दोस्त अब तक जो कुछ सीखा है, असली सीखना वही है । वही तुम्हारी पूंजी है । वही हम सबकी पूंजी है । अब जो कुछ सीखेंगे, वह असली नही होगा । तुममें ताकत होगी तो अब तक के सीखे हुए सत्य को नई परिस्थितियों मे निखारोगे, विकसित करोगे और निरन्तर एक शक्ति अनुभव करते जाओगे ।'[4]

प्रस्तुत प्रोक्ति पूरी कृति में एक ही बार प्रयुक्त हुई है जो कृति के लक्ष्य को खोलने में सहायक सिद्ध होती है । इस प्रोक्ति में लेखक ने सत्य की पहचान के विषय में बताया है—यदि भीतर की शक्ति नही होगी तो सत्य को खो देंगे। यदि वह शक्ति होगी तो विकास का और निखार होगा । इस प्रकार यहाँ भीतरी शक्ति की पहचान पर प्रकाश डाला गया है ।

3.5. निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षण की प्रकृति विशिष्ट होती है, वह गहन संरचना से जुड़ी होत है और उसमे भाषा का सौंदर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। साथ ही यह विवेचन किसी भी पाठ । प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षणों का विश्लेषण-विवेचन करने के लिए सम्यक् आधार प्रदान करता है ।

---

1. रामवृक्ष बेनीपुरी, अम्बपाली (दिल्ली : राजपाल ऐंड संस, 1985), पृ० 47
2. वही, पृ० 49   3. वही, पृ० 70
4. रामदरश मिश्र, दूसरा घर (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1986), पृ० 60

प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन

4. 1. प्रोक्ति-विश्लेषण : स्वरूप-स्पष्टीकरण :

प्रोक्ति-विश्लेषण एक पद्धति है जो, किसी भी पृथक्-पृथक् पंक्तिबद्ध सामग्री को संयुक्त करने का प्रयास करती है। इसे भाषा और भाषा-सदृश माना गया है जो एक से अधिक प्राथमिक वाक्यों को संयुक्त करती है तथा कुछ स्थानिक संरचना को एक पूर्ण प्रोक्ति के रूप में निरूपित करती है।[1]

प्रोक्ति-विश्लेषण में उन तत्त्वों तथा तत्त्वों के अनुक्रमों को जमा किया जाता है, जो दूसरे तत्त्वों के समान अथवा समतुल्यार्थक परिवेश रखते हैं। इन पर परस्पर एक दूसरे के समतुल्य होने के अथवा एक ही समतुल्य-वर्ग के सदस्य होने के संदर्भ में विचार किया जाता है।[2]

प्रोक्ति-विश्लेषण का अर्थ है एक वाक्य से बृहत्तरपाठ का संरचनात्मक विश्लेषण।[3]

प्रोक्ति-विश्लेषण के विषय में यह मान्यता भी है कि यह 'किया गया' से 'कहा गया' का अन्तर स्पष्ट करता है। व्याकरणिक दृष्टिकोण से वाक्यों की प्रकार-संख्या कम है। प्रमुख तौर पर बयान, प्रश्न, अवश्यकरणीय, आज्ञार्थक आदि हैं, जिन्हें प्रोक्ति-नियम जोड़ने में समर्थ है। इसी तरह शब्द के साथ किये जाने वाले कार्य-व्यापार को भी प्रोक्ति कहीं बृहत्तर कुलक के द्वारा जोड़ने की स्थिति में होती है। शब्दों के द्वारा व्यक्त किये जाने वाले ऐसे कार्य-व्यापार कहीं

---

1. उद्धृत, रोजर फ़ाउलर, लिंग्विस्टिक थियॅरी ऐण्ड द स्टडी ऑव लिटरेचर, एसेज ऑन स्टाइल ऐण्ड लैंग्वेज, सम्पादक रोजर फ़ाउलर (लंदन : रूटलेज ऐण्ड कीगेन पाल, 1965, पुनर्मुद्रण, 1979) पृ० 17
2. रोबर्ट एम. डब्ल्यू. डिक्शन, ह्वाट इज लैंग्वेज : ए न्यू एप्रोच टु लिंग्विस्टिक डिस्क्रिपशन (लण्डन : लौंगमैन्स ग्रीन ऐण्ड कम्पनी लिमिटेड, 1966), पृष्ठ 84
3. वेब्स्टर्स थर्ड न्यू इंगलिश डिक्शनरी, खण्ड-एक (शिकागो : विलियम बॅटन पब्लिशर्ज, 1967)

बड़े और बहुतेरे हैं, *जिन्हें उद्गार के नियमों के द्वारा जोड़ने की स्थिति सामने* आती है। अस्वीकृति, चुनौती, वापसी, अपमान, संकल्प, धमकी आदि के द्वारा।[1] प्रोक्ति-विश्लेपण को साहित्य में दो भिन्न वस्तुओं को निर्दिष्ट करने के क्रम में व्यवहृत किया जाता है। अपने पहले निर्देशी अर्थ मे यह विड्डोसन, हेरिस, हैलिडे और हसन के द्वारा व्यवहृत हुआ है, जहाँ वाक्यों के संयोजन और वाक्य-व्यवहार के रूप में इसे ग्रहण किया जाता है। यहाँ सम्बद्ध पाठ में प्राय: वाक्य संरचना के पुनर्गठन पर विचार किया जाता है, साथ ही उन कौशलों को भी रेखांकित किया जाता है, जिनके द्वारा वाक्यो को संग्रथित करने से पाठ का निर्माण सम्भव हो पाता है। अपने दूसरे निर्देशी अर्थ में वह सेवाद के दृष्टिकोण को उजागर करता है। यहाँ इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि वाक्य-समूह किस तरह क्रिया-व्यापार को निष्पन्न करने के लिए व्यवहृत होते हैं।[2]

4. 2. प्रोक्ति-विश्लेपण : घटक-स्पष्टीकरण :

4. 2. 1. निल्ज एरिक एंक्विस्ट का घटक-स्पष्टीकरण :

किसी भी समंजस प्रोक्ति के लिए अन्तर-वाक्यीय समंजसता अपेक्षित है, जो विहित क्षेत्रीय अभिलक्षणों से जुड़ी होती है। इसे भाषावैज्ञानिक पदों के जरिये घटित और विश्लेषित किया जाता है। एन. इ. एंक्विस्ट ऐसे अभिलक्षणों को तीन मुख्य रूपों में समूहित करते हैं : (1) टॉपिक (Topic), (2) फोकस (Focus) और (3) लिंकेज (Linkage)। इन्हें हिन्दी में क्रमश: विषय, केन्द्रण और संयोजन कहा जा सकता है। विषय के अन्तर्गत प्रोक्ति जैसी इकाई का मुख्य कथ्य प्रयुक्त शब्दों की पारस्परिक संसक्ति और प्रोक्ति के क्षेत्र को लिया जाता है। केन्द्रण मे उन शब्दों और शब्द-समूहों के चयन और उनके प्रकार्य का रेखांकन किया जाता है, जो किसी वाक्य या वाक्यांश मे संयोजित होते हैं। इनमे प्राय: केन्द्रण के दिलचस्प कौशल वहाँ उभरते हैं, जो अप्रस्तुत होकर हमारे ध्यान को खींचते हैं। यह केन्द्रण ध्वनिस्तर और वाक्यस्तर के विभिन्न कौशलों

---

1. डब्ल्यू सेवा, लैंग्वेज इन द इनर सिटी : स्टडीज इन द ब्लैक इंगलिश वर्नाक्यूलर (फिलाडेलफिया : यूनिवर्सिटी ऑव पेनिसिलवानिया प्रेस, 1972) पृ० 298-99
2. विजय गंभीर, 'लैंग्वेज टीचिंग ऐण्ड डिस्कोर्स', लैंग्वेज : स्टाइल ऐण्ड डिस्कोर्स, सम्पा० ओंकार एन. कौल (नई दिल्ली : बाहरी पब्लिकेशन, प्राइवेट लिमिटेड, 1986), पृ० 170
1. एन. इ. एंक्विस्ट, 'स्टाइल इन सम लिंग्विस्टिकल थिअरीज', लिटरेरी स्टाइल : अ सिम्पोजियम, सम्पा. सेमूर चैटमैन (लण्डन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971), पृ० 57

में व्यक्त होता है। संयोजन वह तत्त्व है जो वाक्यांश, योजकों, सर्वनामों, काल-अनुक्रमों और समनुहारों को नियोजित करता है। ये ही वे तत्त्व हैं जो प्रत्येक वाक्य को उसके प्रोक्तिगत परिवेश में बहि: संरचना के स्तर पर संयोजित करते हैं।

4. 2. 2. मैथेसियस द्वारा प्रवर्तित एवं अनेक भाषाविदों द्वारा विकसित प्रकार्यमूलक वाक्य-परिप्रेक्ष्यीय घटक-स्पष्टीकरण :

प्रोक्ति-विश्लेषण के घटक स्पष्टीकरण के संदर्भ में चेकमैथेसियस भाषाविद का नाम महत्वपूर्ण है। इसने प्र. वा. प. का प्रवर्तन किया, जिसे बाद में डेन्स और फायरवास आदि ने विकसित किया है। प्रोक्ति-विश्लेषण के घटक तत्त्व को समझने के लिए प्रकार्यमूलक वाक्य परिप्रेक्ष्य (Perspective) का व्यवहार किया जाता है।[1] किसी भी प्रोक्ति के विश्लेषण के लिए इसकी जानकारी अपेक्षित है। इसका व्यवहार व्यक्तिमूलक धाराओं में सहर्षणीमूलक तत्त्वों की अधिकाधिक विभेदकता के अनुरूप निम्नलिखित तत्त्वों को निर्दिष्ट करने के क्रम में किया जाता है—

1. वाक्य में उन खण्डों के बीच विभेद करना सम्भव है, जो संदर्भ और स्थिति से उभरने वाली ज्ञातव्य सूचनाओं को उपस्थित करती है और जो ऐसी नयी सूचनाओं को सूचित करती हैं, जिनका अनुमान श्रोता नहीं लगा सकता है।
2. सन्दर्भ-निर्भर ऐसे खण्डों के बीच विभेद करना संभव है, जो उसी पाठ के वाक्यों के दूसरे खण्ड के साथ जुड़े होते हैं।
3. किसी वाक्य के ऐसे खण्डों के बीच अन्तर संभव हो सकता है जिनमें महत्तर या न्यूनतर साम्प्रेषणिक क्षमता होती है, ऐसी क्षमता जो वक्ता के उद्देश्य का सवाल पैदा करती है।
4. यह सम्भव है कि सम्प्रेषण में किसी वस्तु रूप 'त्र' को किसी दूसरी वस्तु 'ज्ञ' के बारे में कहने के लिए एक निश्चित अनुमोदित क्रम हो जो वाक्य में सक्रिय हो, जहाँ 'त्र' सदैव 'ज्ञ' के आगे-आगे चलता है।
5. यह सम्भव है कि वाक्य का एक तत्त्व व्यतिरेक के द्वारा दूसरे सभी तत्वों के द्वारा वशीभूत हो रहा हो। यह पक्ष प्रायः व्यतिरेक के अभिप्रेरण के प्रश्न के साथ जुड़ा हो और रेखीय स्वनिक क्रियान्वयन में उपस्थित हो।

फायरबास ने (Fiarbas) साम्प्रेषणिक गति की धारणा प्रस्तुत की है। यह एक एकीय संश्लेष है। यहाँ यह मान्यता है कि अवधारणा को उपस्थित करने का यह तरीका साम्प्रेषणिक महत्त्व के अनुपात पर आधारित होता है।

---

1. डेंट पायलोश और बी. पालेक, 'फंक्शन ऑफ गेटिंग पर्सपेक्टिव ऐण्ड टैक्स्ट लिंग्विस्टिक्स', करेंट ट्रेंड्ज इन टैक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा. वुल्फ गैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी. ग्रूटर, 1978). पृ. 212, 213, 214

साम्प्रेषणिक गति की धारणा इस आ . ए-शिल्प पर टिकी है कि सम्प्रेषण स्थैतिक नहीं होता है, वह गतिशील होता है वस्तुतः यह गतिकी एक प्रकार की गुणवत्ता है जो सम्प्रेषण के विकास की अग्रगामिता में उपस्थित होती है। यह सम्प्रेषण में सूचना की क्रियान्वित होने वाली विकसनशीलता में उसके उद्घाटित होने की भूमिका में उपस्थित होती है। किसी वाक्य-तत्त्व के द्वारा संवहित सम्प्रेषणिक गतिकी के अनुपात के द्वारा वह छोर स्पष्ट होता है, जहाँ वाक्य-तत्त्व अगले सम्प्रेषण के विकास में सहायक होता है। सम्प्रेषित गतिकी की अवधारणा को भावाश्रित और आगमनात्मक तौर पर स्थापित किया जा सकता है। इस अभिगम को ग्रहण करते हुए यह पाया जाता है कि यहाँ संदर्भ-निर्भर तत्त्व ज्ञात सूचनाओं को मुहैया करते हुए सम्प्रेषण के अगले विकास की दृष्टि से उन तत्त्वों की अपेक्षा कम योग-दान करते हैं, जो अज्ञात सूचनाओं को, संदर्भ-स्वतंत्र तत्त्वों को मुहैया करते हैं। संदर्भ-निर्भर तत्त्व संदर्भ-स्वतंत्र तत्त्वों की अपेक्षा गतिकी के न्यूनतर अनुपात का संवहन करते हैं।

फायरबास बौलिंगर से सहमत है कि अर्थपरक वस्तुएं अपने साम्प्रेषणिक महत्त्व को बढ़ाती हैं। प्रत्येक सूचना-इकाई में सूचना-नाभिक का प्राथमिक बिन्दु अथवा द्वितीयक के द्वारा अनुगमित प्राथमिक बिन्दु होता है। सूचना-नाभिक एक प्रकार का चाप है। यहाँ वक्ता एक भाग को रेखांकित करता है। यह भाग संदेश का सम्पूर्ण भी हो सकता है, जिसे वह सूचना-रूप में निर्वचित करना चाहता है। यहाँ जो केन्द्रक (फोकल) होता है, उसी में नयी सूचना होती है।

फायरबास (FIARBAS) ने संदर्भ के बहुतेरे स्तरों को समेकित करने वाला एक ऊर्ध्वाधर-क्रम निर्दिष्ट किया है। इसमें सबसे सामान्य स्तर अनुभव का है, जिसे वक्ता और श्रोता के द्वारा सांझें तौर पर सामान्य ज्ञान के ज़रिये मुहैया किया जाता है। इन्हीं स्तरों में तात्कालिक अनुभव का तदर्थ (Ad-hoc) संदर्भ भी होता है। यह अभिव्यक्ति के क्षणों में स्थिति के द्वारा सामने प्रस्तुत होता है। इस तरह का अनुभव वृहत्तर प्रतिवध के अनुपात को संघटित करता है। यहाँ तदर्थ शाब्दिक संदर्भ, वाक्य से प्रारम्भ होने वाला संदर्भ होता है। फायरबास ने सबसे छोटा स्तर वाक्य का माना है। यही वह विशिष्ट इकाई है, जिससे फायरबास संदर्भ-निर्भरता और संदर्भ-मुक्तता की धारणा को व्युत्पन्न करता है, जैसा यह वक्ता के मंतव्यानुरूप अपने अभिव्यंजन से होता है। फायरबास तात्कालिक साम्प्रेषणिक उद्देश्य की भी बात करता है। यह वक्ता का साम्प्रेषणिक संदर्भ ही है, जो परिमित दृश्य (Narrow Scene) उपस्थित करता है। यह परिमित दृश्य सार्वभिक अनुकूलन होता है।[1]

---

1. जेड. पावनोवा और वी. पालेक, 'फंक्शनल सेंटेंस पर्सपेक्टिव एंड टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स', करेंट ट्रेंड्स इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा. वुल्फगैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी. गूटर, 1978), पृ. 214-215

फ़ायरवास की यह 'साम्प्रेषणिक गतिकी' भी प्रोक्ति-विश्लेषण के घटक-तत्वों का निर्देश करती है।

4. 3. प्रोक्ति-विश्लेषण : प्रक्रिया-स्पष्टीकरण .

प्रोक्ति-विश्लेषण की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण दो रूपो मे द्रष्टव्य है। अपने पहले रूप में यह सामान्य प्रोक्ति-विश्लेषण की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण है और दूसरे रूप मे साहित्यिक प्रोक्ति-विश्लेषण की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण। यह स्पष्टीकरण मूलतः विश्लेषण का प्रक्रियांकन है :

4. 3. 1. सामान्य-प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन
4. 3. 2. साहित्यिक प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन

4. 3. 1. सामान्य प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन :

सामान्य प्रोक्ति का विश्लेषण-प्रक्रियांकन अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत किसी भी प्रकार की प्रोक्ति का विश्लेषण किया जा सकता है। यहाँ अक्षक-'वर्तक', 'प्रदत्त-नवीन एवं 'बनावट'-'बुनावट' की विश्लेषण-प्रक्रिया विचारणीय है। एम. ए. के. हैलीडे ने प्रोक्ति की विश्लेषण-प्रक्रिया में वाक्य की इकाई मे 'थीम' अर्थात् 'अक्षक' और 'रीम' अर्थात् 'वर्तक' की संकल्पना को प्रस्तुत किया है। वाक्य का प्रस्तोता वाक्यांश मे अथवा वाक्य में 'अक्षक' और 'वर्तक' की द्विविभागीय संरचना प्रस्तुत करता है। इस संरचना के अनुक्रम में 'अक्षक' आरंभिक स्थिति में आता है। 'अक्षक' एक ऐसा भाषिक एकक होता है, जिसे आगे की प्रोक्ति से पुन: प्राप्त किया जाता है। पर ऐसा अनिवार्य नहीं है कि यह चयन संदर्भ-मुक्त हो। हैलीडे के अनुसार, 'थीम' अथवा 'अक्षक' प्रकार्यमूलक वाक्य-परिप्रेक्ष्य का वह तत्त्व है, जो पहली स्थिति में क्रियान्वित होता है और उससे पूर्व आगे किसी एकक के साथ उसका कोई सम्बंध नहीं होता है।

हैलीडे ने 'प्रदत्त' (Given) और 'नवीन' (New) का द्विविभाजन (डिकोटामी) भी प्रस्तुत किया है। यह सूचना-नाभिक और सूचना-एकक की धारणा के जरिए सामने आता है। यह वह प्रक्रिया है, जिसमे स्वनिक क्रियान्वयन का परिज्ञान पूर्वानुमित होता है। प्रत्येक सूचना-इकाई यहाँ एक तान-वर्ग में क्रियान्वित होती है। हैलीडे प्रोक्ति-घटक के विषय में स्पष्ट करते हैं कि वह अपनी कूटबद्ध सम (Equative) संरचना के द्वारा उन साधनों को मुहैया करता है जो आनुभविक प्रकार्य को प्रत्येक सम्भव तौर पर 'अक्षक', 'वर्तक' और

---

1. एम. ए. के. हैलीडे, 'द प्लेस ऑव फंक्शनल सेंटेंस पर्सपेक्टिव', द सिस्टम ऑव लिंग्विस्टिक डिस्क्रिप्शन, सं. डेन्स, पृ. 53

'प्रदत्त', 'नवीन' के रूप मे विभाजित करता है।[1]

हैलीडे ने 'प्रदत्त' और 'नवीन' को 'अक्षक' और 'वर्त्तक' से स्पष्ट तौर से अलगाया है। उसके अनुसार दोनों परस्पर एक दूसरे से अलग हैं। 'प्रदत्त' और 'नवीन' की संरचना भाषिक तत्वो के अनुक्रम से क्रियान्वित नही होती है। 'प्रदत्त-नवीन' तथा 'अक्षक-वर्त्तक' के बीच जो आंशिक समानता दीखती है यह वस्तुतः वाक्यांश और सूचना-इकाई के बीच की समानता है, जो प्रदत्त सूचना इकाई की संघटना को 'बायीं' ओर से 'दायीं' ओर अग्रसारित करने की प्रवृत्ति में परिणामित होती है। *यदि वह उपस्थित है तो नवीन की ओर उन्मुख है।*[2]

'प्रदत्त' और 'नवीन' ऐसे विकल्प हैं, जो वक्ता के भाग में उपस्थित होते हैं। इसे पाठपरक या स्थितिपरक परिवेश के द्वारा निर्धारित नही किया जा सकता। जो 'नवीन' है, वह वस्तुतः इस पर निर्भर करता है कि वक्ता 'नवीन' के रूप मे उपस्थित करने के लिए किसे चुनता है, क्योंकि प्रोक्ति से ऐसी सम्भावनाओं मे केवल उसके निष्पन्न होने की ऊँची सम्भावना पाई जाती है। 'प्रदत्त' प्रकार्य का यह आशय है कि वह पुनः प्राप्य सूचना के रूप में वक्ता के द्वारा उपस्थित हुआ है। साथ ही वह ऐसा सूचना-घटक है, जिसे पाठ या स्थिति से अपनी तई व्युत्पन्न करने के लिए श्रोता से प्रत्याशा नही की जा सकती है। इसी प्रकार 'नवीन' के रूप मे विशेषीकृत घटक वह है, जिसे वक्ता अव्युत्पन्न सूचना के बतौर, जो कुछ पहले कहा जा चुका है, उसके योगात्मक रूप में या उसके विरोधात्मक रूप में, निर्वचन के लिए रेखांकित करता है। 'प्रदत्त' को आद्यावृत्ति के तौर पर या स्थितिगत तौर पर पुनः प्राप्त करने के लिए उपस्थित किया जाता है।[3]

इस प्रकार 'प्रदत्त' और 'नवीन' दोनों ही 'अक्षक' और 'वर्त्तक' से भिन्न हैं, यद्यपि दोनों ही पाठात्मक प्रकार्य हैं। यहां 'प्रदत्त' का अर्थ उस एकक से है, जो यहां सम्पर्कन के उस नुकते से जुड़ा है, जिसे आप जानते हैं। इस तरह वह वाक्य-संरचना के तत्त्व से बंधा हुआ नही है, जबकि 'अक्षक' का अर्थ है कि वह 'शीर्ष' (Heading) है, जिसे 'मैं' कह रहा हूँ। 'प्रदत्त' नाम के सन्देश-

---

1. एम. ए. के. हैलीडे, *'नोट्स ऑन ट्रांजिटिविटी ऐंड थीम इन इंग्लिश'*, जर्नल ऑव लिग्विस्टिक्स, भाग-2, 1967, पृ. 202
2. एलेक्स डी. जोइया और ए. स्टेनटॅन, टर्म्स इन सिस्टिमिक लिंग्विस्टिक्स, (लंदन : वेट्सफोर्ड एकेडेमिक ऐंड ऐडुकेशनल लि., 1980), पृ. 31
3. एलेक्स डी. जोइया और ए. स्टेनटॅन, टर्म्स इन सिस्टिमिक लिंग्विस्टिक्स (लंडन : वेट्सफोर्ड एकेडेमिक ऐण्ड ऐडुकेशनल लि., 1980), पृ० 32

भाग का पाठात्मक संघटना मे विशेष प्रकार्य होता है। यह सूचना-एकक को शेष प्रोक्ति मे जोड़ता है। 'प्रदत्त' से हम यह भी समझते हैं कि यह संदेश का वह भाग है, जिसे अंग्रेजी मे 'सुर-तान' के द्वारा दिखाया जाता है, जिससे प्रोक्ति की शृंखला मे एक सम्पर्कन संघटित होता है। वस्तुतः संदेश के प्रत्येक एकक के लिए एक ऐसा भाग भी है, जो दूसरी तरह की संघटना के लिए अनिवार्यतः संवाद नही बनता। यह वक्ता का 'नवीन' संकेत होता है, जिसके विषय में वह स्पष्ट रूप मे उसे अपुनः प्राप्य सूचना के बतौर प्राप्त करता है। यही यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रदत्त'-'नवीन' संरचना वाक्य की संरचना न होकर सूचना-एकक की संरचना है, जो अनुक्रम के द्वारा क्रियान्वित न होकर सुरतान के द्वारा क्रियान्वित होती है, जबकि 'अक्षक'-'वर्त्तक' संरचना वाक्य-संरचना है, जो भाषिक एकक के अनुक्रम के द्वारा क्रियान्वित होती है, और वहाँ 'अक्षक' पहले आता है। 'प्रदत्त' श्रोता-निर्भर और संदर्भ-सम्बद्ध होता है, जबकि 'अक्षक' वक्ता-निर्भर और संदर्भ-मुक्त होता है। प्रदत्त का तत्त्व ऐच्छिक है, पर 'नवीन' प्रत्येक सूचना-एकक मे उपस्थित होता है, क्योंकि बिना इसके अलग से किसी भी सूचना-एकक का अस्तित्व नही होता है।

सूचना-संरचना पाठ की संघटना को 'प्रदत्त' और 'नवीन' के बतौर संकेतित करती है ये प्रायः 'टॉपिक' (Topic) और 'कामेंट' (Comment) के तहत 'अक्षक' और 'वर्त्तक' के साथ सम्मिलित होने लगने हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि 'टॉपिक' और 'कामेंट' किसी विषय के बारे मे परम्परित और संश्लिष्ट अवधारणा है, जहाँ 'अक्षक' के साथ 'प्रदत्त' का और 'वर्त्तक' के साथ 'नवीन' का साहचर्य देखा जाता है, । यहा चयन की स्वतंत्रता होती है। किन्तु 'अक्षक' 'प्रदत्त' के साथ सहसंबंधित होता है और 'वर्तक' 'नवीन' के साथ, जब तक कि किसी दूसरे संरेखन मे चयन के लिए कुछ और कारण सामने नही आ जाते हैं।

सूचना-एकक में अनिवार्यतः नवीन तत्त्व का समावेश होता है, क्योंकि यदि वहाँ नया कुछ भी नही हुआ तो कोई सूचना ही नही होगी। सूचना-एकक को हैलीडे संरचनात्मक एकक मानते हैं, पर ऐसा एकक, जो व्याकरण मे संघटनो की सूचना-इकाइयो के ऊर्ध्वाधर-क्रम को पार कर जाता है।

वस्तुतः यह प्रोक्ति का 'प्रतिपाद्यीकरण' है, जो वाक्य-संरचना के 'अक्षक' और 'वर्त्तक' जैसे प्रकार्य निर्धारित करना है। 'अक्षक' को प्रोक्तिपरक सूचनात्मक अवयव से सम्बद्ध किया जाता है। 'अक्षक' [illegible] प्रोक्ति मे [illegible]
साचे के अन्तर्गत सम्प्रेषण-कार्य की संरचना से [illegible]
एकक के असीमन और उनमे सूचना के वितरण [illegible]
वह है, जिसके विषय में बात की जाती है। [illegible]
यह प्रस्थानपरक मुक्ता होता है [illegible] को [illegible]
को चुनने का 'अक्षक' के बतौर [illegible]

यह कहा जाता है कि यह वह है, जिसके विषय में 'आप' बात कर रहे थे या जिसके विषय में 'मैं' पहले बात कर रहा था; इतना ही नही 'अक्षक' वह है, जिसके विषय मे 'मैं' बात कर रहा हूँ और जिसके विषय मे 'मैं' 'अभी' बात कर रहा हूँ।

हैलीडे ने उद्देश्य (Subject)की बात करते हुए उसके चार विशिष्ट संश्लिष्ट प्रकार्यों का भी उल्लेख किया है, जिनमे तीन प्रकार्य संरचना के प्रकार्य हैं—

1. प्रकर्त्ता—यह तार्किक उद्देश्य होता है। इसमे विचारात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है।
2. मानक उद्देश्य (Model Subject)—'मॉडल सब्जेक्ट' मूलतः व्याकरणिक उद्देश्य होता है। इसमें अन्तर-वैयक्तिक प्रकार्य क्रियाशील रहता है।
3. अक्षक—इसमें मनोवैज्ञानिक उद्देश्य होता है। इसमें पाठात्मक प्रकार्य क्रियाशील रहता है।
4. प्रदत्त—यह मनोवैज्ञानिक उद्देश्य-संख्या—2 है, जो सूचना इकाई के तहत पाठपरक प्रकार्य के रूप मे उपस्थित होता है।

एफ० डेन्ज ने 'प्रदत्त' और 'नवीन' जैसे दो शीर्षकों के तहत दो मूलभूत संदर्भ-मुक्त पहलुओं पर विचार किया है। डेन्ज के अनुसार आनुक्रमिक रूप मे इकट्ठी की गई सूचनाओं की संख्या प्रायः इतनी विस्तृत होती है, कि वक्ता को जो प्रोक्ति-संवहन करता है, उस समूह मे से अपना चयन निश्चित करना होता है और वह इनमे से 'अक्षक' के उद्गार का चयन करता है, जब तक कि इसके अलावा किसी और को चुनने का विशेष कारण सामने न आता हो। किसी भी हालत मे ज्ञात सूचनाओं का भाग जो किसी उद्गार मे सामने आता है वास्तव मे वैसे तत्व हैं, जो चुने गए 'अक्षक' के साथ नजदीकी तौर पर जुड़ते हैं और 'वर्त्तक' के साथ परोक्ष तौर पर। प्रामाणिक तौर पर यह जरूरी हो जाता है कि पाठ मे एक निश्चित बिन्दु तक जमा हुए सूचना-समुच्चय और इस संवहित सूचना के भाव के बीच विभेद स्पष्ट किया जाय। यह अन्तर ही प्रत्येक उद्गार के लिए ज्ञात सूचनाओं के बीच से चयन को स्पष्ट करता है। ऐसा माना जाता है कि यह चयन 'वर्त्तक' उद्गार के चयन के द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष तौर पर निर्धारित होता है।

रुकैया हसन ने पाठ और प्रोक्ति के बीच बनावट (टेक्स्चर) और बुनावट (स्ट्रक्चर) की बात की है। उसके अनुसार बुनावट वह तकनीकी पद है जो निरूपित पाठ में सम्बद्ध व्याकरणिक इकाइयों को निर्दिष्ट करता है तथा जिसके कारण अनुच्छेद मे भाषिक ससक्ति विद्यमान होती है।

'बुनावट' की गुणवत्ता एक ओर पूर्ण और अपूर्ण पाठ के बीच अन्तर करती है, तो दूसरी ओर विभिन्न साहित्य-रूपों के बीच विभेद स्पष्ट करती है। वस्तुतः यह पाठ के साहित्य-रूप से सम्बद्ध है, और उसके प्रकार से सम्बद्ध है। यह एक सामान्य संरचित सूत्र है, जो वास्तविक संरचना के क्रम-विन्यास (Array)

को अनुमत करता है। बनावट के सूत्रीकरण में आरम्भ, मध्य और अन्त के तत्वों पर ध्यान दिया जाता है।[1]

प्रोक्ति-विश्लेषण से यह आशय लिया जाता है कि यह सन्दर्भ, पूर्वानुमान, अर्थापत्ति तथा अध्याहार का आधार लेकर किसी प्रोक्ति-विशेष के अन्तर-वाक्यीय सम्बन्ध का इस तरह विश्लेषण करे कि उस प्रोक्ति की निजी अस्मिता भी स्पष्ट हो सके। इसमें सन्दर्भ के तहत निर्दिष्ट होने वाली वस्तु के साथ शब्द का सम्बंध स्पष्ट किया जाता है, पूर्वानुमान में व्यवहारवादी या तथ्यवादी संकल्पना के आधार पर कथन के समान पृष्ठभूमि को लिया जाता है, अर्थापत्ति में सन्दर्भ-आधारित लक्ष्यपरक अर्थ लिये जाते हैं तथा अध्याहार में लुप्त अंश को प्राप्त कर उद्गार की पूर्णता के आधार पर भाव-विशेष को निरूपित किया जाता है। उपर्युक्त आधार-प्रक्रिया प्रोक्ति-विशेष के वाक्य-प्रथम को प्रतिपाद्य इकाई में बाँटकर विश्लेषण को प्रस्तावित करती है। इस रूप में प्रोक्ति में वाक्य के अनुक्रमी रूप को अक्षक-वर्तक, प्रदत्त-नवीन और उद्देश्य-विधेय के आधार पर विश्लेषित किया जाता है। हिन्दी में डा० कृष्णकुमार गोस्वामी ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'क्रोध' निबंध का प्रोक्ति-विश्लेषण 'अक्षक' (थीम) और 'वर्तक' (रीम) के के आधार पर प्रस्तुत किया है।[2] पर साहित्यिक प्रोक्ति-विश्लेषण की दृष्टि से यह विश्लेषण समर्थ सिद्ध नहीं हो सका है।

4.3.2 साहित्यिक प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रविधांकन

साहित्यिक प्रोक्ति एक विशेष प्रकार की प्रोक्ति होती है। अतः यदि प्रोक्ति का उद्देश्य पाठ में अर्थ के उत्पादन का और इसमें भी अशेष नये अर्थ के उत्पादन का, उसकी साभिप्रायता का अध्ययन करना है, तो केवल सामान्य प्रोक्ति के विश्लेषण के साँचे और प्रक्रियाकन से काम नहीं चल सकता। इस दिशा में एक ओर मुकारोव्स्की के सौन्दर्यात्मक भाषिक प्रकार्य की अवधारणा और दूसरी ओर प्रजनक व्याकरण के विकास और कलाकृतियों की भाषा में अध्याकरणिकता की संकल्पना में पैदा हुई सामान्य दिलचस्पी ने एक विशेष प्रकार के

---

1. रुकैया हसन, 'टेक्स्ट इन द सिस्टेमिक फंक्शनल मॉडल', करेंट ट्रेन्ड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स. सम्पा. वूल्फ गैंग यू. ड्रेसलर, (न्यूयार्क : डी ग्रूटर, 1978), पृ. 228-229
2. डॉ० कृष्ण कुमार गोस्वामी, 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का प्रोक्ति-विश्लेषण', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और भारतीय समीक्षा, सम्पादक डॉ० सुरेश कुमार (आगरा : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, 1987), पृ० 208-219

व्याकरणिक विमर्श की आवश्यकता दिखाई है। विशिष्ट प्रोक्ति के सन्दर्भ में साहित्यिक भाषा के निदर्शन के बतौर व्याकरणिकता से विचलन की संकल्पना को रेखांकित किया गया है, जिसमें काव्यात्मकता की क्षमता निहित है। बायर-बाख ने *प्रजनक व्याकरण* के साँचे में *प्रजनक काव्यशास्त्र* के विकास के लिए प्रयास किया है, जिससे भाषिक सर्जनात्मकता में अभिरुचि को पुनर्नवीकृत किया जा सकता है। इसके अनुगत रूप में काव्यात्मकता के अन्य निर्देशी तत्त्व भी भी सामने आये हैं —बहु-वर्यता, संश्लिष्टता, समतुल्यार्थक सरचना, समान्तरता आदि। इस दृष्टि से विचार करने वालों में थॉम गॉटनर (1965-1969) बायर-बाख (19 5) ग्रीमा (1967, 70, 72) लीच (1966) लिविन (1962-64) स्टोपने (1972) पैटमैन (1971) डेवी (1961) फाउलर (1966) गार्दिन (1964) सिवियोक (1960) आदि प्रमुख हैं। रोमन याकोब्सन ने मुकारोव्स्की की ही तरह भाषा के छह प्रकार के प्रकार्यों में उसके काव्यात्मक प्रकार्य की बात करते हुए उसके विशिष्ट विश्लेषण का संकेत किया है। पैटोफ़ी ने काव्यात्मक पाठ की रचनात्मक इकाइयों और अर्थ-परक निर्वचन के बीच के संबंधों का विश्लेषण किया है। ईटन ने साहित्यिक कृति की सर्जना करते हुए रचनाकार के के मस्तिष्क में निहित सारे प्रासंगिक सन्दर्भों की समग्रता का अध्ययन किया है तथा उसमें और साहित्य के अर्थ-विज्ञान के बीच अन्तर स्पष्ट किया है। उसकी दृष्टि में साहित्य के अर्थविज्ञान का आशय उस—'सिमिक्स' (Semics) का अध्ययन करना है जो किसी रचना को पढ़ते हुए पाठक के मस्तिष्क में सभी प्रासंगिक सन्दर्भों की समग्रता का अध्ययन बन जाता है।[1]

इन सभी प्रयत्नों में भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के तहत 'अप्रप्रस्तुति' (Foregrounding) के विकसित प्रतिमान के आधार पर साहित्यिक प्रोक्ति की विश्लेषण-प्रक्रिया अधिक सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त तथ्यों एवं तथ्यों को देखते हुए साहित्यिक प्रोक्ति का विश्लेषण एकाधिक रूपों में करना समीचीन है।

एक प्रविधि प्रोक्ति के प्रकारों के विश्लेषण की है, जिसमें प्रोक्ति-विशेष में अनुप्रयुक्त प्रोक्ति के विभिन्न प्रकारों को विश्लेषित कर सामने रखा जा सकता है। प्रोक्ति के ऐसे विश्लेशण को प्रकार-आधारित विश्लेषण कहा जाता है, जो यह सूचना मुहैया करता है कि किसी प्रोक्ति-विशेष में उसके कितने प्रकारों का व्यवहार किया गया है। इस दृष्टि से उसका फलक कितना विस्तृत है या कितना सीमित तथा यह भी कि कौन-सा प्रोक्ति प्रकार बार-बार आवर्तित होता

1. गोत्ज वाइनोल्ड, 'टेक्स्ट लिंग्विस्टिक एप्रोचिज टु रिटेन वर्क्स अव आर्ट' करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट् लिंग्विस्टिक्स, सम्पा. वूल्फ गैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क वाल्टर डी. ग्रूटर, 1978), पृ. 137-140

को अनुमत करता है। बनावट के सूत्रीकरण में आरम्भ, मध्य और अन्त के तत्वों पर ध्यान दिया जाता है।[1]

प्रोक्ति-विश्लेषण से यह आशय लिया जाता है कि यह सन्दर्भ, पूर्वानुमान, अर्थापत्ति तथा अध्याहार का आधार लेकर किसी प्रोक्ति-विशेष के अन्तर-वाक्यीय सम्बन्ध का इस तरह विश्लेषण करे कि उस प्रोक्ति की निजी अस्मिता भी स्पष्ट हो सके। इसमें सन्दर्भ के तहत निर्दिष्ट होने वाली वस्तु के साथ शब्द का सम्बध स्पष्ट किया जाता है, पूर्वानुमान में व्यवहारवादी या तथ्यवादी संकल्पना के आधार पर कथन के समान पृष्ठभूमि को लिया जाता है, अर्थापत्ति में सन्दर्भ-आधारित लक्ष्यपरक अर्थ लिये जाते हैं तथा अध्याहार में लुप्त अंश को प्राप्त कर उद्गार की पूर्णता के आधार पर भाव-विशेष को निरूपित किया जाता है। उपर्युक्त आधार-प्रक्रिया प्रोक्ति-विशेष के वाक्य-प्रबन्ध को प्रतिपाद्य इकाई में बांटकर विश्लेषण को प्रस्तावित करती है। इस रूप में प्रोक्ति में वाक्य के अनुक्रमी रूप को अक्षक-वर्तक, प्रदत्त-नवीन और उद्देश्य-विधेय के आधार पर विश्लेषित किया जाता है। हिन्दी में डा० कृष्णकुमार गोस्वामी ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'क्रोध' निबंध का प्रोक्ति-विश्लेषण 'अक्षक' (थीम) और 'वर्तक' (रीम) के के आधार पर प्रस्तुत किया है।[2] पर साहित्यिक प्रोक्ति-विश्लेषण की दृष्टि से यह विश्लेषण समर्थ सिद्ध नहीं हो सका है।

4.3.2 साहित्यिक प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन

साहित्यिक प्रोक्ति एक विशेष प्रकार की प्रोक्ति होती है। अतः यदि प्रोक्ति का उद्देश्य पाठ में अर्थ के उत्पादन का और इसमें भी अशेष नये अर्थ के उत्पादन का, उसकी साभिप्रायता का अध्ययन करना है, तो केवल सामान्य प्रोक्ति के विश्लेषण के सांचे और प्रक्रियांकन से काम नहीं चल सकता। इस दिशा में एक ओर मुकारोव्स्की के सौन्दर्यात्मक भाषिक प्रकार्य की अवधारणा और दूसरी ओर प्रजनक व्याकरण के विकास और कलाकृतियों की भाषा में अव्याकरणिकता की संकल्पना में पैदा हुई सामान्य दिलचस्पी ने एक विशेष प्रकार के

---

1. रूकैया हसन, 'टेक्स्ट इन द सिस्टिमिक फंक्शनल मॉडल', करेंट ट्रेन्ड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा. वुल्फ गैंग यू ड्रेसलर, (न्यूयार्क : डी ग्रूटर, 1978), पृ. 228-229
2. डॉ० कृष्ण कुमार गोस्वामी, 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का प्रोक्ति-विश्लेषण', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और भारतीय समीक्षा, सम्पादक डॉ० सुरेश कुमार (आगरा : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, 1987), पृ० 208-219

व्याकरणिक विमर्श को आवश्यकता दिखाई है। विशिष्ट प्रोक्ति के सन्दर्भ में साहित्यिक भाषा के निदर्शन के बतौर व्याकरणिकता से विचलन की संकल्पना को रेखांकित किया गया है, जिसमें काव्यात्मकता की क्षमता निहित है। वायर-बाख ने प्रजनक व्याकरण के साँचे में प्रजनक काव्यशास्त्र के विकास के लिए प्रयास किया है, जिससे भाषिक सर्जनात्मकता में अभिरुचि को पुनर्नवीकृत किया जा सकता है। इसके अनुगत रूप में काव्यात्मकता के अन्य निर्देशी तत्त्व भी भी सामने आये हैं —बहुअर्थता, संश्लिष्टता, समतुल्यार्थक संरचना, समान्तरता आदि। इस दृष्टि से विचार करने वालों में थॉम गॉटनर (1965-1969) वायर-बाख (19 5) ग्रीमा (1967, 70, 72) लीच (1966) लिविन (1962-6) स्टोपने (1972) पैटमैन (1971) डेवी (1961) फाउलर (1966) गार्डिन (1964) शिवियोक (1960) आदि प्रमुख हैं। रोमन याकोब्सन ने मुकारोव्स्की की ही तरह भाषा के छह प्रकार के प्रकार्यों में उसके काव्यात्मक प्रकार्य की बात करते हुए उसके विशिष्ट विश्लेषण का संकेत किया है। पैटोफी ने काव्यात्मक पाठ की रचनात्मक इकाइयों और अर्थ-परक निर्वचन के बीच के संबंधों का विश्लेषण किया है। ईटन ने साहित्यिक कृति की सर्जना करते हुए रचनाकार के के मस्तिष्क में निहित सारे प्रासंगिक सन्दर्भों की समग्रता का अध्ययन किया है तथा उसमें और साहित्य के अर्थ-विधान के बीच अन्तर स्पष्ट किया है। उसकी दृष्टि में साहित्य के अर्थविज्ञान का आशय उस—'सिमिक्स' (Semics) का अध्ययन करना है जो किसी रचना को पढ़ते हुए पाठक के मस्तिष्क में सभी प्रासंगिक सन्दर्भों की समग्रता का अध्ययन बन जाता है।[1]

इन सभी प्रयत्नों में भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के तहत 'अग्रप्रस्तुति' (Foregrounding) के विकसित प्रतिमान के आधार पर साहित्यिक प्रोक्ति की विश्लेषण-प्रक्रिया अधिक सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त तत्वों एवं तथ्यों को देखते हुए साहित्यिक प्रोक्ति का विश्लेषण एकाधिक रूपों में करना समीचीन है।

एक प्रविधि प्रोक्ति के प्रकारों के विश्लेषण की है, जिसमें प्रोक्ति-विशेष में अनुप्रयुक्त प्रोक्ति के विभिन्न प्रकारों को विश्लेषित कर सामने रखा जा सकता है। प्रोक्ति के ऐसे विश्लेषण को प्रकार-आधारित विश्लेषण कहा जाता है, जो यह सूचना मुहैया करता है कि किसी प्रोक्ति-विशेष में उसके कितने प्रकारों का व्यवहार किया गया है। इस दृष्टि से उसका फलक कितना विस्तृत है या कितना सीमित तथा यह भी कि कौन-सा प्रोक्ति प्रकार बार-बार आवर्तित होता

---

1. गोत्ज वाइनोल्ड, 'टेक्स्ट लिंग्विस्टिक एप्रोचिज टू रिटेन वर्क्स अव आर्ट', करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा. वूल्फ गैंग यू. ड्रेसलर (न्यूयार्क : वाल्टर डी. ग्रूटर, 1978), पृ. 137-140

है, कौन-सा सामान्य रूप में उपस्थित होता है और कौन-सा विरल रूप में सामने आता है।

प्रोक्ति-विश्लेषण की दूसरी प्रविधि संरचना-आधारित है। इसके अन्तर्गत प्रोक्ति के गठन की बाह्य सरचना एव आन्तर संरचना के विभिन्न तत्त्वो के आधार पर किसी प्रोक्ति का विश्लेषण किया जाता है। इससे यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि प्रोक्ति-विशेष के अन्तर्गत वक्ता या लेखक ने कितने प्रकार के बाह्य संरचनात्मक या कितने प्रकार के गहन सरचनात्मक कौशलों का उपयोग किया है। इन कौशलो के आवर्तित, सामान्य या विरल प्रयोग के आधार पर वक्ता या लेखक के शैली-तत्त्वो को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रोक्ति के विश्लेषण की तीसरी प्रविधि शुद्ध तौर पर शैली-लाक्षणिक है। इसके अन्तर्गत किसी भी प्रोक्ति-विशेष में प्रोक्ति स्तर पर शैली के प्रकट होने वाले विभिन्न अभिलक्षणों को रेखांकित किया जाता है। मुख्यतः साहित्यिक प्रोक्ति के विश्लेषण मे इस प्रकार की विश्लेपित प्रविधि का उपयोग अधिक होता है। यहा शैली-अभिलक्षणो को विशेष प्रतिमान के अनुरूप गृहीत किया जाता है। अप्रस्तुति के अन्तर्गत विचलन, विपथन, समान्तरता और विरलता जैसे तत्त्वो का रेखाकन किया जाता है।

4. 4. निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य प्रोक्ति का विश्लेषण जहाँ केवल अक्षक-वर्तक सम्बन्ध की गतिकी के द्वारा परिचालित होता है, वहाँ साहित्यिक प्रोक्ति का विश्लेषण प्रोक्ति के विभिन्न प्रकारो, प्रोक्ति की विभिन्न संरचनाओ और प्रोक्ति के शैलीपरक अभिलक्षणो की तिहरी पुष्ट आधार-भूमि पर सार्थकता प्राप्त करता है।

सन्दर्भिका

1. अज्ञेय — नदी के द्वीप, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, तीसरा संस्करण।
2. आस्गुड, चार्ल्स ई० — 'सम ईफ़ेक्ट्स मोटिवेशन ऑन स्टाइल ऑव इनकोडिंग', स्टाइल इन लैंग्वेज (संपा०) टी० ए० सिबियोक, न्यूयार्क : एम० आई० टी० प्रेस, 1960
3. उस्पेंस्की, बी० ए० — ए पोयटिक्स ऑव कम्पोजीशन, (अनु०) वी० जेवरिन और एस० विटिग, बर्कले और लॉस एंजेल्स : यूनिवर्सिटी ऑव कैलिफोर्निया प्रेस, 1973
4. एंक्विस्ट, निल्स एरिक — 'ऑन डिफाइनिंग स्टाइल', लिंग्विस्टिक्स ऐंड स्टाइल, (संपा०) जॉन स्पेंसर, लंदन : ऑक्स-फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964.
5. एन्क्विस्ट, निल्स एरिक — लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स, द हेग : मूतन, 1973
6. एडवर्ड्ज, ए० डी० — लैंग्वेज इन कल्चर ऐण्ड क्लास, लण्डन : हेनिमेन ऐजुकेशनल बु० लि०, 1976
7. कार्टर, रोनाल्ड — लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर : एन इन्ट्रोडक्टरी रीडर इन स्टायलिस्टिक्स, लण्डन : जॉर्ज एलेन ऐण्ड अनविन, 1984
8. कलर, जोनाथन — डिफाईनिंग नैरेटिव यूनिट्स, स्टाइल ऐण्ड स्ट्रक्चर इन लिटरेचर (संपा०) रोजर फाउलर, न्यूयार्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975
9. गंभीर, विजय — लैंग्वेज टीचिंग ऐण्ड डिस्कोर्स लैंग्वेज: स्टाइल ऐण्ड डिस्कोर्स, (संपा०) ओंकार एन० कौल, नई दिल्ली : बाहरी पब्लि०, 1986

10. प्रोसेव, ई० यू०	फ्रेंच स्ट्रक्चर लिस्ट विज़ ऑन नैरेटिव ग्रामर, करेंट ट्रेन्ड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, (संपा) वूल्फ गैंग यू० ड्रैसलर, न्यूयार्क : वाल्टर डी० ग्रूटर, 1978
11. गोस्वामी, कृष्ण कुमार	'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का प्रोक्ति-विश्लेषण', आचार्य शुक्ल और भारतीय समीक्षा (सपा०) सुरेश कुमार, आगरा : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, 1987
12. गोस्वामी, कृष्ण कुमार	शैक्षिक व्याकरण और व्यावहारिक हिन्दी, दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1981
13. चैटमैन, सैमूर	'द स्ट्रक्चरल ऑव नैरेटिव ट्रांसमिशन', स्टाइल एँड स्ट्रक्चर इन लिटरेचर, (संपा०) रोजर फाउलर, न्यूयार्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975
14. चैपमैन, रेमण्ड	लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड लिटरेचर, लण्डन : एडवर्ड आर्नल्ड लि०, 1974
15. जोइया, एलेक्स डी० और स्टेनटॅन	ए टर्म्स इन सिस्टिमिक लिंग्विस्टिक्स, लन्डन : वेट्सफोर्ड एकेडेमिक ऐण्ड एजूकेशनल लि०, 1980
16. जोइया, एलेक्स डी० और स्लेनलान, एड्रियन	टर्म्स इन सिस्टिमिक लिंग्विस्टिक्स : ए गाइड टु हैलीडे, लण्डन : वेट्सफोर्ड एकेडेमिक एण्ड ऐजूकेशनल लि०, 1980
17. डोलकोवस्की, एलेक्जेण्डर	'पोयम्स', डिसकोर्स एण्ड लिटरेचर, (सपा०) टी० ए० वानडिक्क, एमर्स्डम जॉन बेनजामिन पब्लिशिंग कम्पनी, 1985
18. डिक्शन. रोबर्ट एम० डब्ल्यू०	ह्वाट इज लैंग्वेज: ए न्यू एप्रोच टु लिंग्विस्टिक डिस्क्रिप्शन, लण्डन : लोंगमेन्स, 1966
19. ड्रैसलर यू०, वूल्फगैंग	करेंट ट्रेंड्ज इन टेस्टड् लिंग्विस्टिक्स, बर्लिन : वाल्टर डी ग्रूटर, 1978
20. डोलजेल, एल०	एसेज इन स्ट्रक्चरल पोयटिक्स एंड नैरेटिव सिमेटिक्स, टोरेंटो : विक्टोरिया यूनिवर्सिटी, 1979
21. तिवारी, भोलानाथ	शैलीविज्ञान, दिल्ली : शब्दकार, 1979

22. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी — 'खुला आसमान', राग-विराग (संपा०) रामविलास शर्मा, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण।

23. पावेल, थामस जी० — 'लिटरेरी नैरेटिव्ज', डिस्कोर्स एंड लिटरेचर, (संपा०) टी० ए० वान डिक्क, एम्सटर्डम : जान बेंजामिस पब्लि० कं०, 1985

24 पाल्चोका, जैड० और पालेक बी० — 'फंक्शनल सेंटेंस पर्सपेक्टिव एंड टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स', करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स (संपा०) वुल्फ गैंग, न्यूयार्क : वाल्टर डी० ग्रूटर, 1978

25. प्राप, ब्लादिमिर — ला मारफोलॅजी, द कुन्त, पेरिस : ट्रैडैक्सन म डेरीज एंड ऐली, 1970.

26. प्रसाद, जयशंकर — कामायनी, इलाहाबाद : लीडर प्रेस, एकादश सस्करण।

27. प्रीतमा, अमृता — अमृत प्रीतम की चुनी हुई कहानियाँ, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 1982.

28. फाउलर, रोजर — एसेज ऑन स्टाइल ऐण्ड लैंग्वेज लन्दन : रुटलेज कीगेन पाल, 1965

29. फाउलर, रोजर — लिंग्विस्टिक क्रिटिसिज्म, न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986

30. बेनीपुरी, रामवृक्ष — अम्बपाली : राजपाल ऐंड संज, 86

31 भाटिया, कैलाशचन्द्र — 'प्रोक्ति संरचना', परिषद् पत्रिका, (संपा०) श्री रजन सूरि देव, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जुलाई, 1980

32. मार्तिन, ए० — अ फंक्शनल व्यु ऑव लैंग्वेज, आक्सफोर्ड : 1962

33. मिलिक, लुइस टी० — स्टायलिस्टिक्स ऑन स्टाइल : ए हैंड बुक विद सिलेक्शंज फॉर एनालिसिस, न्यूयार्क : चार्ल्स स्क्राइब्जर्स सज, 1969

34. मिश्र, रामदरश — दूसरा घर, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1986

35. मिश्र विद्यानिवास — 'काव्यभाषा का गठन और साभिप्राय विचलन', रीतिविज्ञान, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973

36. मोयन, ए० आर० (संपा०) इन्सालक्लोपीडिया, अँव लिंग्विस्टिक्स, ऑक्सफोर्ड : पर्गमैन प्रेस, 1969
37. मुकारोव्स्की, जे० 'स्टैंडर्ड लैंग्वेज ऐण्ड पोयटिक लैंग्वेज', अ प्राग स्कूल रीडर एस्थेटिक्स, लिटरेरी स्ट्रक्चर ऐण्ड स्टाइल (संपा०) पी० एल० गार्विन, वाशिंगटन : डी० सी० जार्ज टाउन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964
38. मोहन राकेश एक घटना, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, 1974
39. मोहन राकेश क्वार्टर, दिल्ली : राजपाल ऐण्ड सन्ज, 1972
40 मोहन राकेश पहचान, दिल्ली : राजपाल ऐण्ड सन्ज, 1972
41. मोहन राकेश वारिस, दिल्ली : राजपाल ऐण्ड सन्ज, 1972
42. मोहन राकेश नये बादल, काशी : भारतीय ज्ञानपीठ, 1957
43 याकोब्सन, रोमन 'लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड पोयटिक्स', स्टाइल इन लैंग्वेज (संपा०) टी० ए० सिबियोक, कैंब्रिज : मास : एम० आई० टी० प्रेस, 1960
44. लिविन, एस० आर० 'एडिटर्स इन्ट्रोडक्शन', लिटरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम (संपा०) सेमूर चैटमैन, लण्डन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971
45. लिप्शि, जी० सी० अ सर्वे अँव स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स, लन्डन : फ़ेबर ऐण्ड फेबर, 1972
46. लीच और मिखाइल एच स्टाइल इन फिक्शन, लन्डन : लौंगमैन, 1975
47. लीच, जी० एन० सिमेंटिक्स, बाल्टीमोर : पेंगुइन, 1974
48. लीच, जी० एन० लिंग्विस्टिक्स ऐंड द फिगर्स अँव रैटोरिक', एसेज ऑन स्टाइल ऐण्ड लैंग्वेज, (संपा०) रोजर फाउलर, लण्डन : रुटलेज एण्ड कीगेन पॉल, 1979
49. लीच, जी० एन० स्टायलिस्टिक्स, डिस्कोर्स एण्ड लिटरेचर (संपा०) टी० ए० वार्नाडस्क, एम्सटर्डम : जान बेनजामिन पब्लिशिंग कम्पनी, 1985
50. लेबा, डब्ल्यू० लैंग्वेज इन द इनर सिटी : स्टडीज इन द ब्लैक इंग्लिश वर्नाक्यूलर, फिलाडेलफिया : यूनिवर्सिटी अँव पेनिसिलवानिया प्रेस, 1972.

51. लौंगकेर, राबर्ट और लेबिशन, स्टीफेन — करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, न्यूयार्क : वाल्टर डी० ग्रूटर, 1978

52. वाइनोल्ड, गोत्ज — 'टेक्स्ट लिंग्विस्टिक एप्रोचज टु रिटेन वर्क्स ऑव आर्ट', करेंटट्रेंड्ज इन लिंग्विस्टिक्स, (संपा०) वूल्फ गैंग यू० ड्रेसलर, न्यूयार्क : वाल्टर डी० ग्रूटर, 1978

53. वानडिक्क, टी० ए० — स्टडीज इन प्रेग्मैटिक्स ऑव डिस्कोर्स, द हेग : मूतन, 1981

54. वारबर्ग, जे — 'सम आस्पेक्ट्स ऑव स्टाइल', द टीचिंग ऑव इंग्लिश, क्विर्क और स्मिथ, लंदन : 1959

55. वानपियर — स्टायलिस्टिक्स ऐण्ड साइकोलॉजी, इन्वेस्टीगेशन ऑव फोरग्राउंडिंग, लण्डन : क्रूम हेल्म, 1986

56. विड्डोसन, एच० जी० — स्टायलिस्टिक्स ऐण्ड द टीचिंग ऑव लिटरेचर, लन्दन : लोगमैन, 1975

57. वेब्सटर — थर्ड न्यू इंग्लिश डिक्शनरी, खण्ड एक, शिकागो : विलियम बेन्टन पब्लिशर्ज़, 1967

58. शर्मा, ओम प्रकाश — हिन्दी भाषा : प्रयोग के स्तर, दिल्ली : पांडुलिपि प्रकाशन, 1982

59. शर्मा, कृष्ण कुमार — शैलीविज्ञान की रूप रेखा, जयपुर : संघी प्रकाशन, 1974

60. शीतांशु, पांडेय शशिभूषण — भारती की काव्य भाषा, करनाल : नटराज पब्लिशिंग हाउस, 1985

61. शीतांशु, पाण्डेय शशिभूषण — शैलीविज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण, दिल्ली : देवदार प्रकाशन, 1984

62. शीतांशु, पांडेय शशिभूषण — 'शैलीविज्ञान : प्रतिमान और प्रकार, चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1987

63. शीतांशु, पाण्डेय शशिभूषण — 'अज्ञेय की काव्यभाषा', अज्ञेय, (संपा०) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दिल्ली : नेशनल, 1978

64. शुक्ल, श्री लाल — राग दरबारी, दिल्ली : राजकमल, 1980

65. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ — संरचनात्मक शैलीविज्ञान, दिल्ली : आलेख प्रकाशन, 1979

66. सिक्लेयर जे० मैक और कूल्टहार्ड, आर० एम० . — 'टुअर्ड्ज ऐन एनालिसिस अॅव डिस्कोर्स, इंग्लिश यूज्ड बाई टीचर्ज ऍड प्युपिल्ज, लण्डन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975
67. सोलसपोर्टा — 'ए प्रोग्राम फॉर द डेफिनिशन अँव लिटॅरेचर', टेक्साज : यूनिवर्सिटी अँव टेक्साज, अंक-36, 1958
68. हैरिस, जैड — स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स, शिकागो : 1960.
69. हैलिडे, एम० ए० के० और हसन रुकैया — कोहिश्जन इन इंग्लिश, लन्डन : लौंगमैन, 1976
70. हैलीडे, एम० ए० के० — 'लिंग्विस्टिक फंक्शन एंड लिटॅरेरी स्टाइल : एन इन्क्वायरी इन टु द लैंग्वेज अँव विलियम गोल्डिंग्ज द इनहेरिटर्ज', लिटॅरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम, (संपा०) सेमूर चैटमैन, लन्डन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971
71. हैलीडे, एम० ए० के० — 'लैंग्वेज स्ट्रक्चर ऍड लैंग्वेज फंक्शन', न्यू होराइजंज इन लिंग्विस्टिक्स, (संपा०) जास लायंस, बाल्टीमोर : पेंगुइन बुक्स, 1972
72. हैलीडे, एम० ए० के० — 'द प्लेस अँव फंक्शनल सेंटेंस पर्सपेक्टिव' द सिस्टम अँव लिंग्विस्टिक्स डिस्क्रिप्शन (सपा०) डैन्स एफ०, 1974
73. हैलीडे, एम० ए० के० — 'नोट्स ऑन ट्रंजिटिविटी ऍड थीम इन इंग्लिश', जर्नल अँव लिंग्विस्टिक्स, भाग-2 1967

प्रयुक्त हिन्दी-अँग्रेजी पारिभाषिक

अंक	Points Stage
अग्रचरण अग्र प्रस्तुति	Foregrounding
अधिवयान	Meta-Statement
अधिभाषात्मक	Meta-Linguistic
अधिनिवेशी-स्तर	Meta-Diegetive Level
अधीनस्थ स्तर	Diegetic Level
अध्याहरण	Ellipsis
अनभिज्ञात पहुंच	Unrecognized Arrival
अनुपस्थिति	Absence
अनुप्रयोगी सोपान	Application Scale
अनुसन्धानात्मक अनुक्रम	Contractual Sequence
अनेकशः आवर्तित	Repetitive
अन्तर	Distance
अन्तर-निवेशी स्तर	Intra-Diegetive Level
अन्तर-शीर्ष कथांश	Intra-Peak Episodes
अन्तर-वैयक्तिक अभाव	Inter-Personal Lack
अभिधेयात्मक	Denotative
अभिलक्षण	Features
अभिव्यक्ति	Voice
अभिव्यक्तिक	Expressive
अभिव्यंजनात्मक	Expressive
अभिज्ञान	Recognition
अवश्य करणीय-प्रोक्ति	Obligative Discourse
अव्याकरणिकता	Ungramaticality
अवयवभूतार्थता	Componential Meaning

अस्वीकार्यता	Unacceptability
आख्यान	Recit
आद्यात्मक-एकात्मक	Anaphoric-Singularative
आनुमानिक-प्रोक्ति	Hypothetical Discourse
आनुभूतिक	Experiencial
आन्तिक	Final
आन्तरिक	Internal
आरम्भिक	Initial
आरोपक	Accusations
आह्वान	Summons
इच्छात्मक	Conative
इच्छाबोधक-प्रोक्ति	Optative Discourse
उक्ति	Utterance
उच्चावच अर्थवत्ता	Hyponymy
उत्तर	Reply
उत्तर-शीर्ष-कथांश	Post-Peak-Episodes
उद्घाटक	Opening
उद्धार	Rescue
उद्देश्य	Subject
उन्मीलक शब्द	Key-word
उल्लंघन	Violation
एकात्मक	Singularative
कठिन पाठ	Difficult Task
कथ्यात्मक	Thematic
कथात्मक प्रतिज्ञप्ति	Narrative Preposition
कथात्मक वस्तु	Narrative Content
काव्यात्मक	Poetic
क्रम	Order
क्रम-विन्यास	Array
क्रमान्तरित	Transpassed
कर्तृवाचकता	Agency
कारणात्मक	Causal
काल और पक्ष	Time and Aspect
काल्पनिक प्रोक्ति	Visionary Discourse

क्रियार्थ-द्योतक	Modal
केन्द्रण	Focus
गहन संरचना	Deep Structure
जादुई	Magical
तथ्यात्मक	Pragmatic
तथ्यिकी	Pragmatics
तदर्थ	Adhoc
तार्किक	Logical
तुलना	Gomparision
दण्ड	Punishment
दिशाधारित	Tenor-based
दृष्टिकोण	Point of View
दृष्टिकोण : अभिवृत्ति	Point of Vew : Attitude
दृष्टिकोण : परिप्रेक्ष्य	Point of Vew : Perspective
ध्यान	Meditation
नवीन	New
निदर्शात्मक	Illustrative
निपात और प्रत्यय	Particles und Affixes
निश्चयार्थी-प्रोक्ति	Indicative-Discourse
निष्पादक अनुक्रम	Performative Sequence
निर्देशन निर्देशात्मक सन्दर्भ	Reference
निषेधादेश	Interdication
निष्पन्न-पाठ	Task Accomplished
नीति-वचन	Moral
पराकोटिपद	Superordinal
पर्यायपरकता	Synonymy
परिचय	Introduction
परिणाममूलक	Illative
परिदृश्य	Setting
परिप्रेक्ष्य	Perspective
परिमित दृश्य	Narrow Scene
परीक्षा	Test
पाठ	Text
पाठात्मक	Textual

पाठ-भाषा विज्ञान	Text–Linguistics
पाठ की गतिकी	Theme-Dynamics
पावती-अवधानन	Acknowledge
पुन: उद्घाटक	Re-opening
पूर्वशीर्ष कथांश	Pre-Peak Episodes
पूर्व सन्दर्भ	Back-referance
प्रकार्य	Function
प्रकाशात्मक	Elicitations
प्रकर्ता	Actant
प्रगमन	Move
प्रतिक्रिया	Reaction
प्रतिक्रम	Counter Action
प्रतिवेदित	Reported
प्रतिभागी की आद्यपुनरुक्ति	Participant Anaphora
प्रतिस्थापन	Substitution
प्रतिज्ञप्ति	Preposition
प्रतिपाद्य शब्द	Theme word
प्रतिबन्धित प्रोक्ति	Gonditional Discourse
प्रत्याशा शृंखला	Expectancy Chain
प्रदत्त	Given
प्रभावात्मक	Impressive
प्रयुक्ति	Register
प्रयुक्ति-निर्धारक	Determiner of Registers
प्ररचन	Construction
प्रवेशक	Aperture
प्रस्थान	Departure
प्रस्ताव	Resolution
प्राचल	Model
प्रावधान	Provision
प्रोक्ति	Discourse Utterance
प्रोक्ति का मुख्य भाग	Body of Discourse
प्रोक्ति-स्तर	Discourse Level
बद्ध-उद्घाटक	Bound-Opening
बहिर्निवेशी-स्तर	Extra-Diegetive Level
बहुरूपात्मकता	Poly-Modelity

बारम्बारिता	Frequencies
बाह्य	External
बाह्य-संरचना	Surface Structure
बिन्दु	Points
भविष्य-सूचक प्रोक्ति	Predictive-Discourse
मानक उद्देश्य	Model Subject
मूल्य-मीमांसा	Axiological
मूल्यांकन	Evaluation
मैं-प्रतिमा	I-Image
योगात्मक	Additive
योजक और आरम्भक	Conjunction and Introducer
रहस्य-उद्घाटन	Exposure
रूपान्तरण	Transformation
रेखीयता	Linearity
रेखांकक	Marker
लेखकीय और उत्तारकीय स्वर	Author's and Narrator's Voice
वक्ता और श्रोता-विषयक मनोवृत्ति	Attitude towards speakers and listeners
वंचना	Fraud
वंश	Genus
वाक्यातीत	Beyond-Sentence
वाक्यांशगत-संयोजन	Clausal Linkage
वाचिक	Verbal
वापसी	Return
वार्तालाप	Dialogue
विकल्पात्मक	Alternative
विचलन	Deviation
विचारात्मक/पाठात्मक	Ideational
विजय	Victory
विपथन	Deflection
विपरीतार्थकता	Autonymy
विफलीकरण	Frustration
वितरण	Delivery
विधि-आधारित	Mode-based
विधेय	Predicates
विनिमय	Exchange
विरलता	Rarity
विरोधात्मक	Adversive
विवाह	Wedding
विवरणित	Narrativized
विशद-संरचना	Macro-Structure

विस्थापनमूलक अनुक्रम	Disjunctional Seqence
विषय	Topic
विषम निवेशी-स्तर	Hetero-Diegetive Level
वेष्ठक	Closure
वृत्तिकता	Modelity
व्यवच्छेदक	Differentiative
व्याख्यात्मक	Explanative
शाब्दिक पुनरावृत्ति	*Lexical Reitiration*
शाब्दिक संसक्ति	Lexical Cohesion
शाब्दिक बन्धन और अन्वयन	*Lexicalities and Paraphrases*
शीर्ष	Peak
केन्द्रण	*Focusing*
संकेत-वाचकता	Deictics
संघर्ष	Struggle
सजीवता	Animacy
सन्निधान	Collocation
सन्दर्भबद्ध	Context-Bound
संपर्क-द्योतक	Phatic
समंजसता	Coherence
समर्थक	Supporter
सम-निवेशी-स्तर	Homo-Diegative Level
समापक	Finis
सम	Equative
समान्तरता	Parallelism
संयोजक	*Combination, Conjunction*
संयोजना	Linkage
संरचना	Structure
सर्वेक्षण	Reconnaissance
सहअपराधिक	Complicity
सहकर्तृक	Acteurs
साकल्यपरक	Global Structure
सीमान्तक-आरम्भक	Framing
सूचनात्मक	Informative
सूक्ष्म-संरचना	Micro-Structure
सौन्दर्यात्मक	Aesthetic
स्थानिक संरचना	*Local Structure*
स्थानान्तरण	Transfer
स्थितिकाल	Duration
स्वीकृति	Acceptance
स्वैच्छिक प्रोक्ति	Voluntary Discourse